पंचम अध्यायः
बालमुकुंद गुप्त की कविताई एवं अन्य लेखन

5.1 बालमुकुंद गुप्त का काव्य

5.2 चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टि

5.3 संपादित/अनूदित रचनाएँ

पंचम अध्याय :
बालमुकुंद गुप्त की कविताई एवं अन्य लेखन

5.1 बालमुकुंद गुप्त का काव्यः

रुप विधानः-

गुप्त जी ने कुछ कविताएँ ब्रजभाषा में, कुछ खड़ी बोली हिंदी में और कुछ मिश्रित भाषा के पद्यों में लिखी हैं। सन् 1884 ई. से लेकर सन् 1889 ई. तक गुप्त जी की जो भी कविताएँ हैं, वह उर्दू और फारसी में है। उस समय तक गुप्त जी हिंदी नहीं जानते थे। इन कविताओं की संख्या हिंदी कविताओं से अधिक है। हिंदी कविताओं का आरंभ सन् 1889 ई0 के अन्त से हुआ है। पहली कविता 'भैंस का स्वर्ग', दूसरी 'वसन्तोत्सव', तीसरी 'सर सैयद का बुढ़ापा' हिंदी में है और चौथी कविता 'पिता' ब्रजभाषा में है। आरंभ में ही अपनी कविताओं के बारे में स्पष्ट करते हुए 'स्फुट कविता' नाम की पुस्तक में गुप्त जी ने कहा है- ''यह मेरी हिन्दी भाषा की तुकबन्दियों का संग्रह है। हिन्दी में मैंने आरम्भ से आज तक जो फुटकर तुकबन्दियाँ की हैं वह सब इसमें है।..... कविता के लिए अपने देश की बातें, अपने देश के भाव और अपने मन की मौज दरकार है। हम पराधीनों में यह बातें कहाँ? फिर हमारी कविता क्या और उसका गुरूत्व क्या? इससे इस तुकबन्दी में कुछ तो अपने दुःख का रोना होता है और कुछ अपनी गिरी दशा पर पराई हँसी होती है, वहीं दोनों बातें इस तुकबन्दी में है।''[1]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि गुप्त जी ने अपनी कविताओं को तुकबन्दी माना है और देश-दशा दर्शाने का माध्यम। परन्तु उनकी कविताएँ मात्र तुकबन्दियाँ नहीं हैं, उनमें अन्य सौंदर्य भी दिखाई देता है। यह सत्य है कि गुप्त जी ने कविताएँ भी श्रमसाध्य यत्न से नहीं लिखी थीं। परन्तु इससे उनकी कविता नीरस अथवा कला

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.245, (भूमिका से)

सौन्दर्य से हीन नहीं मानी जाएगी। श्री मुनीश्वर झा ने 'बालमुकुंद गुप्त एक मूल्यांकन' में लिखा है, ''गुप्त जी अपनी कविता को भले ही तुकबन्दी कह लें, पर उनकी कविता, कविता का श्रृंगार है। यहाँ मधुसिंचन नहीं है, पच्चीकारी भी नहीं है, किसी प्रकार का कृत्रिम परिष्कार नहीं है, किन्तु यहाँ कविता के प्राण अपने आप बसे हैं। जन जीवन का साहचर्य है, लोक जीवन की भावना है।''[1]

गुप्त जी की रचनाओं में संस्कृत निष्ठ हिंदी, व्यवहारिक हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और फारसी भाषाओं के शब्दों का प्रयोग सहज रूप से हुआ है। गुप्त जी मूलतः उर्दू से हिंदी में आए थे। उनकी कविताओं में भाषा की शुद्धता की तरफ ध्यान न देकर प्रवाह और सहजता को अधिक महत्त्व दिया गया है। प्रकृति अनुसार वे अपनी भाषा का रंग बड़ी सरलता से बदल लेते थे। यही प्रयोग उन्होंने अपनी कविताओं में भी किया है। विषयानुसार छंद परिवर्तन किया है। 'लक्ष्मीस्त्रोत' कविता में छंद परिवर्तन हुआ है। अन्य कविताओं में जैसे जय रामचन्द्र, जय लक्ष्मी, लक्ष्मी पूजा, दुर्गा स्तुति, आदि में भी छंद परिवर्तन हुआ है। 'जयलक्ष्मी' में 'गुप्त जी' ने छंद परिवर्तन किया है

''मात आपने कंगालन की दशा निहारो,
जिनके आंसुन भीज रह्यो तब आंचल सारो।
कोटिन पै रही उड़त पताका मा जिनके घर,
सो कौड़ी-कौड़ी को हाथ पसारत दर-दर।
हा! तो सी जननी पर्यो,
कंगाल नाम हमरो पर्यो।
धिक्-धिक् जीवन मा लच्छमी।
अब हम चाहत हैं, मर्यो।''[2]

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता 1965, पृ.30

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.290

आरंभ की चार पंक्तियों में दोहा छंद है और नीचे की चार पंक्तियों में चौपाई छंद है। हिंदी की कविताओं में अधिकांश चौपाई छंद का प्रयोग किया है। अधिकांश काव्य में शान्त रस की योजना है। प्रकृतिपरक और भक्तिपरक कविताओं में तो शान्त रस की सुन्दर योजना है। भक्ति की स्तुतियों में माँ और बच्चे के बीच में वात्सल्य रस की योजना दिखाई देती है। जिसमें दुर्गा माँ भवानी, लक्ष्मी, शारदा देवियों को प्रार्थना की गई है। साथ-साथ अपने देशवासियों की दुर्दशा के लिए जिम्मेवार भी माना है। रोष प्रकट करते हुए 'आवहु माय' में गुप्त जी ने कहा है-

''दुर्गा नाम रखाय मात तौहि लाज न आई।
दुर्गति नासिन सक्ति मात, अब कहां गंवाई।।
तो सी माता पाय आज हमरी यह दुर्गति।
भूखे-प्यासे बिडरावहि पावहिं क्लेस अति।।
बेसक हम कपटी कपूत कामी अरु कादर।
दर-दर मारे फिरै हमहि कोउ देहि न आदर।।''[1]

कहीं-कहीं भक्ति के पदों में करुण रस का चित्रण हुआ है। सामाजिक विषमता का चित्रण भक्ति की कविताओं में हुआ है। उस विषमता को दर्शाने के लिए करुण रस की योजना हुई है। 'हे राम' में गुप्त जी ने लिखा है:-

''केते बालक डोलते माता-पिता विहीन,
एक कौर के फेर महं घर-घर आगे दीन।
मरी मात की देह को गीध रहे बहु खाय,
ताहीसों यक दूध को सिसू रह्यो लपटाय।
जहं तहं नर कंकाल के लागे दीखत ढेर,
नरन पसुन के हाड़सों भूमि छई चहुं फेर।''[1]

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.609

इन पंक्तियों में करुण रस के साथ-साथ वीभत्स रस का भी चित्रण हुआ, ब्रज भाषा का प्रयोग है। ब्रज भाषा के अतिरिक्त गुप्त जी की कविताएँ अधिकांश हिंदी में मिलती हैं। 'प्लेग की भूतनी' नामक कविता हरियाणवी में है। प्रकृति परक रचनाओं में 'बसन्त के विरह' नामक कविता है, जिसमें ब्रज भाषा में संवाद शैली प्रस्तुत की गई है। संवाद शैली पहले अमीर खुसरो की रचनाओं में पाई जाती है। गुप्त जी ने वर्णन किया है- ''कामिनी - थामो थामो सखी।

यामिनी - क्यों सखी ऐसे तुम क्यों करती हो?

कामिनी - बीता शिशिर बसन्त आ गया,

यामिनी - तभी पसीनों मरती हो।''[2]

हरियाणा की लोक प्रचलित शैली टेसू में 'गुप्तजी' ने कविताएँ लिखीं। हास्य और व्यंग्य से मिश्रित इस शैली में गुप्तजी ने लॉर्ड कर्जन और अन्य अंग्रेज शासकों को आड़े हाथों लिया है। होली के अवसर पर टेसू की कविताओं में गुप्त जी के हृदय की खुली उमंगे प्रकट होती थीं।

इसी तरह जोगीड़ा भी हरियाणा की एक प्रचलित शैली है। जिसमें गुप्तजी ने संत-महात्माओं के झूठे पाखंड को उजागर करने तथा सभी धर्मों में व्याप्त अनियमितताओं को दर्शाने के लिए प्रयोग किया है। इन कविताओं में अन्य भाषाओं के शब्द भी प्रयोग किये गए हैं। जोगीड़ा में गुप्तजी ने लिखा है-

''अंडा खाया बंडा खाया माछमछरियाँ बीफ।

आज रांध के मुर्गी खाई सब भोजन में चीफ।।

हुए तब पक्के हिंदू कचाई रही न बिंदू।

खूब सिर को घुटवाया जतीका वेश बनाया।।''[1]

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.587

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.438

इन पंक्तियों को पढ़कर नाथ-सिद्धों की उक्तियों की याद आती है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को मिलाकर विचित्र उक्ति बनाना जो अन्य की तरफ इशारा करती हो, इस दृष्टि से यदि हम देखें तो अन्योक्ति अलंकार भी यहाँ सफल हो रहा है। उक्ति में विचित्रता के कारण और अन्य किसी तीसरे की तरफ इशारा करने के कारण 'वक्रोक्ति अलंकार' भी यहाँ कहा जा सकता है। कुछ पद हमें नाथ-सिद्धों की उलटवासियों की याद दिलाते हैं। जैसे-

''बाबाजी वचनम्
अक्कड़ तोडूं कक्कड़ तोडूं तोडूं कच्चा सूत।
बालू पेलूं तेल निकालूं तो जो जोगी का पूत।
रेत में नाव चलाऊँ, नदी में आग लगाऊं।
हवा में भवन बनाऊँ, तवे पे पेड़ लगाऊँ।''[2]

गुप्तजी ने आवश्यकता अनुसार उर्दू-फारसी की उक्तियों का प्रयोग किया है। उर्दू-फारसी के शब्दों और पंक्तियों का प्रयोग हिंदी की ध्वनियोजना की भांति हुआ है। जैसे-

''कुंडी के नकारे पे खुलके का लगा डंका।
नितभंग पी के प्यारे दिन रात बजा डंका।''[3]

गुप्त जी ने अधिकांश स्थलों पर पौराणिक आख्यायिका अथवा इतिवृतसिद्ध वस्तुओं का सहारा लिया है। काल्पनिक आख्यानों द्वारा इन्होंने कई स्थानों पर रसात्मक सृष्टि का प्रयास किया है जैसे- सभ्य बीवी की चिट्ठी, जोरूदास, ताऊ और हाऊ आदि।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.377

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.683

3 डॉ. राजेन्द्र सिंह, बालमुकुंद गुप्त और उनके युग का निबंध साहित्य, कवि सभा दिल्ली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली, 1996, पृ.205

श्री प्रबोध नारायण सिंह ने 'बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' में कहा है- ''काव्य शिल्प की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि गुप्त जी के काव्य में निःसंदेह रुप से उन सौन्दर्य-मूलक तत्वों की विद्यमानता नहीं है जिनके आधार पर उन्हें कालिदास, भवभूमि, विद्यापति, सूर, तुलसी अथवा बिहारी की समकक्षता प्रदान की जाए। उन्होंने आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य के विभिन्न मूलाधायक तत्वों को आधार मानकर रचना नहीं की। उनकी कविता में कहीं भी श्रम साध्य आयास नहीं दीखता है। क्लेश पूर्वक रीति ध्वनि वक्रोक्ति अथवा अलंकारों के समावेश का कहीं भी प्रयास नहीं किया गया है। इनके काव्य में मुख्यतः रसात्मक संदर्भ की सृष्टि की है।''[1]

विषयवस्तुः-

गुप्त जी की कविताओं की विषयवस्तु को डॉ. नत्थन सिंह ने चार भागों में विभाजित किया है। प्रथम देशभक्तिपरक काव्य, द्वितीय भक्ति रस प्रधान काव्य, तृतीय सामाजिक एवं धार्मिक विजय प्रधान काव्य और हास्य एवं व्यंग्य प्रधान रचनाएँ। विषयवस्तु की दृष्टि से गुप्त जी कविताओं में एक ही भाव के दर्शन नहीं हो सकते। इनके काव्य में विविधता के दर्शन होते हैं। यदि एक ही भाव की प्रधानता की बात कहें तो वह है- राष्ट्रीयता। जो भाव उनके गद्य में विद्यमान है वही उनके पद्य में भी सर्वत्र पाया जाता है। जिस राजनीतिक प्रखरता के कारण गुप्त जी को जाना जाता है उसका मुख्य कारण उनकी राष्ट्रीयता है।

गुप्त जी की देशभक्ति पूर्ण कविताओं में निम्नलिखित कविताओं के नाम लिए जा सकते हैं जैसे- सभ्य होली, पॉलिटिकल होली, कर्जननामा, टेसू बड़े लाट कर्जन, सच्चाई, मिन्टो, छोड़ चले शाइस्ताखानी, मल्लयुद्ध, विषाद में हर्ष, आशीर्वाद, सर सैयद अहमद का बुढ़ापा, पंजाब में लायल्टी, ताऊ और हाऊ आदि हैं। गुप्त जी की इन देशभक्ति पूर्ण रचनाओं में अंग्रेज गवर्नर, वायसराय तभा भारत सचिव के कार्यों का

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.170

कच्चा चिट्ठा प्रस्तुत होता है। अंग्रेज अधिकारी कैसे कथनी और करनी में अंतर करते हैं? लोगों को सुसभ्य, शिक्षित और आधुनिक बनाने के उनके कार्यों की आलोचना 'गुप्त जी' ने अपनी कविताओं के माध्यम से की है। जिस समय भारतीय प्रजा गरीबी, अकाल और बीमारी से दम तोड़ रही थी, तो 'कर्जन' जैसे शासक अपने झूठे अहम और शानो-शौकत के प्रदर्शन के लिए धन का दुरूपयोग कर रहे थे। इन शासकों का विरोध करने के लिए 'टेसू' के माध्यम से गुप्त जी ने लिखा है-

''शोर पड़ा दुनिया में भारी, दिल्ली में है बड़ी तैयारी।
देश-देश के राजा आवें, खेमे-डेरे साथ उठावैं।
घर-दर बेचो करो उधार, बढ़िया हो पोशाक तैयार।
बढ़िया रेशम बढ़िया जरी, अच्छी से अच्छी और खरी।''[1]

उस समय बंग-भंग के विरोध में जो स्वदेशी आंदोलन की लहर उठ रही थी, उसको भी गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में विषयवस्तु लेकर प्रयोग किया। गद्य और पद्य दोनों में बंग-भंग का तीव्र विरोध किया। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी वस्तुओं का आग्रह उन्होंने 'विषाद में हर्ष' स्वदेशी आन्दोलन 'ताऊ और हाऊ' और 'आशीर्वाद' जैसी कविताओं के माध्यम से किया।

गुप्त जी को आरंभ से ही अंग्रेजी शासकों की नीतियों की परख थी। इसलिए तो इंग्लैंड में उदार दल की सरकार बनती है तो लोगों को भ्रम होता है कि अब भारत के हालात सुधर जायेंगे। परन्तु गुप्त जी ने लिखा-

''नहिं कोई लिबरल नाहिं कोई टोरी, जो परनाला सोई मोरी।
दोनों का है पंथ अघोरी, होली है, भई होली है।।
अब भी समझो भारत भाई तुम्हें तुम्हारी दशा जनाई।
आप सहो जो सिर पै आई, होली है भई होली है।।''[2]

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.205
2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.200

राष्ट्रीयता के भाव को प्रकट करने के लिए 'गुप्त जी' ने एक और विषयवस्तु का चयन किया है वह है राजभक्तों पर व्यंग्य। 'पंजाब में लायल्टी और 'हम में नमक हलाल' के द्वारा गुप्त जी ने राजभक्तों पर करारी चोट की है-

''आप सभी हैं जानते हम हैं नमक हलाल,
ओरों से मिलता नहीं तभी हमारा ख्याल।
'घूंसखोर' ही है कहा, मारी तो नहिं लात,
फिर क्यों कुरसी त्याग दे ऐसी है क्या बात।''[1]

गुप्त जी ने जिस दूसरे विषय को लेकर कविताएँ लिखी हैं वह हैं 'भक्ति'। 'गुप्तजी' सनातन धर्मी वैष्णव स्वभाव के व्यक्ति थे। नित्य रोज पूजा-पाठ करना, अपने धार्मिक आचरण के अनुसार ही खान-पान का व्यवहार और रामचरित मानस का पाठ करना उनकी दिनचर्या थी। हिंदू धर्म की मान्यताओं का पालन करना उनके सिद्धान्तों में था। वे बहुदेवउपासक थे। इसलिए उनकी रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति पाई जाती है। 'जयरामचन्द्र' 'रामभरोसा' और 'हे राम' में श्रीराम का, 'जयलक्ष्मी और 'लक्ष्मीस्त्रोत' में धन तथा सम्पत्ति की देवी लक्ष्मी का, 'प्रार्थना' में माँ भवानी का, 'आगवानी' और 'आवहुमाय' में शक्ति स्वरूप माता की वंदना की है। भक्ति रस की ये कविताएँ धार्मिक प्रवृत्ति की ओर इशारा भर ही करती हैं परन्तु इनका उद्देश्य देश-दशा का चित्रण करना भी है।

भक्ति रस की कविताएँ एक अन्य दृष्टि में भी विशिष्टता लिए हुए हैं वह है देवी पूजा। जिस युग में स्त्रियों को कोई मान-सम्मान प्राप्त नहीं था, जो समय शोषण और घोर अंधकार का युग था, उस युग में गुप्त जी ने देवी लक्ष्मी, दुर्गा, शारदा और माँ भवानी की स्तुति कर उनका सम्मान बढ़ाया है। नारी शक्ति का स्त्रोत है, इसी भावना के साथ उन्होंने यह आराधना की। भारतवासियों के दीन-दुखियों की प्रार्थना को

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.427

सुनाने के लिए उन्होंने भक्ति का सहारा लिया। श्री प्रबोध नारायण सिंह का कहना है- ''इन कविताओं में विशुद्ध देव-देवी विषयक भावों का समावेश नहीं है। भक्ति-भावना के साथ समाज-भर्त्सना भी सन्निहित है। यंत्र-तंत्र-असहयोग की भावना को तथा प्रकारान्तर से क्रांति की भावना को भी उभारा गया है। सीता, लक्ष्मी, काली, दुर्गा, राम, कृष्ण, शिव और अन्य मान्य देवियों के प्रति उद्‌गार व्यक्त किये गये हैं।''[1]

इन रचनाओं के माध्यम से भारत की दुर्दशा का चित्रण और ईश्वर से देश दशा को सुधारने की प्रार्थना की गई है। भक्ति के माध्यम से राष्ट्रीयता की संकल्पना की गई है। भक्ति और राष्ट्रीयता का अनूठा समन्वय इन रचनाओं में दिखाई पड़ता है।

कुछ कविताओं की विषयवस्तु गुप्त जी ने सामाजिक पृष्ठभूमि से ली है। धार्मिक विषयों के साथ ही सामाजिकता का समन्वय कर दिया है। पाश्चात्य संस्कृति का विरोध, अपनी संस्कृति को छोड़कर दूसरी संस्कृति को अपनाने की होड़, साधुओं के वेश में पाखंड करने का और आलसीपन का विरोध आदि बातों को उन्होंने अपनी रचनाओं में उभारा है। इनमें व्यंग्य के माध्यम से यह बात कही गई है। आलसीपनों पर आलस छोड़कर कर्म करने की प्रेरणा दी गई है। आजकल का सुख, साधो पेट बड़ा हम जाना, दिन नहीं कटता आदि के माध्यम से आलसीजनों को आलस छोड़कर कार्य करने को प्रेरित किया है। साधु-संतों और गुरू-शिष्यों की झूठी परम्पराओं को हास्य के माध्यम से कविताओं में उभारा है। जोगीड़ा के माध्यम से आधुनिक गुरू और शिष्य के विचारों को प्रकाश में लाया गया है। जोगीड़ा में गुप्त जी ने कहा है-

''हाँ सदाशिव गोरख जागे-सदाशिव गोरख जागे-
लण्डन जागे पेरिस जागे, अमेरिका भी जागे।
ऐसा नाद करू भारत में सोता उठकर भागे।''[2]

---

1 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965, पृ.275

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.680

इसी प्रकार 'चेला जी वचनम्' के द्वारा शिष्य के विचारों को प्रकाश में लाया गया है। अंध भक्त मनुष्यों और स्त्रियों को पाखंडी गुरुओं के पीछे पागल होने पर कटाक्ष किया है। हास्य और व्यंग्य का प्रभाव तो 'गुप्त जी' की रचनाओं में सर्वत्र पाया जाता है। गद्य और पद्य दोनों में ही हास्य और व्यंग्य का अनूठा मिश्रण पाया जाता है। विषयवस्तु चाहे धार्मिक रही हो या सामाजिक अथवा फिर राजनीतिक, सभी में व्यंग्यात्मक कटाक्ष दिखाई पड़ता है। टेसू और जोगीड़ा में भी हास्यात्मक व्यंग्य है। सामाजिक मुद्दों पर लिखी गई कविताओं में जैसे- प्लेग की भूतनी, दशहरा अश्लील, तकरीर मुंह जबानी, कलियुग के हनुमान, देशोद्धार की तान, चूहों का मातम, सुधार, सुसभ्य राजा, भैंस का मरिसया, भैंस का स्वर्ग, नया कुछ काम करना है, गुरुजी का हाल, व्याकरणाचार्य आदि में व्यंग्य और हास्य का समावेश है। 'प्लेग की भूतनी' में गुप्त जी ने लिखा है-

''घर, आंगन, दरवाजे खाऊँ चींटी मच्छर डांस।
सांप छिपकली मूस छछून्दर सबका चक्खू मांस।।
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊँ युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊँ बूढ़ा बेईमान।''[1]

कुछ नए विषयों पर गुप्त जी ने लिखा जैसे- पिता, स्वर्गीय कवि, मैक्समूलर, आनन्द, ध्यान, चिन्ता, विषाद, कायापलट, कविता की उन्नति, होली, सभ्य होली इत्यादि। इन कविताओं में हास्य तत्व नहीं है, गंभीरता है, जीवन की संजीदगी है। बच्चों के लिए इन्होंने 'खिलौना' और 'खेल-तमाशा' नाम की पुस्तकें तो लिखी ही साथ-साथ कुछ अन्य कविताएँ भी भारतमित्र में प्रकाशित की जैसे- रेलगाड़ी, प्रभात, नया कुछ करना है, चुन्ना-मुन्ना, मुर्गी-मेजर आदि।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.355

प्रकृति चित्रण को भी गुप्त जी ने अपनी कविताओं का विषय माना है। भक्ति की रचनाओं में प्रकृति वर्णन किया है। वसन्तोत्सव, कोकिल अब मौन क्यों गहीं?, वसन्तबन्धु, प्रभात, बसन्त में विरह आदि में प्रकृति वर्णन दिखाई पड़ता है। परन्तु इनका प्रकृति वर्णन बहुत ही मर्यादित रूप में है। शान्त रस में प्रकृति चित्रण किया गया है।

नवीनताः-

'गुप्त जी' ने कविता लिखने के लिए जिस तथ्य का प्रयोग किया वह था 'सत्य'। 'सत्य' कहने के लिए इन्होंने बहुत से नवीन प्रयोग किए। इनके पद्यों में राष्ट्रीयता तो सर्वत्र दिखाई पड़ती है, परन्तु इस भावना को जागृत करने के लिए 'गुप्त जी' ने देश-दशा का भी सचित्र वर्णन किया है। धार्मिक पद्यों के साथ समाज की दशा का चित्रण भी मिलता है। किसानों की भूख, गरीबी, बीमारी और शोषण से बचने के लिए प्रार्थना की जाती है। देवी-देवता की स्तुति सिर्फ आराधना के लिए नहीं की गई है, अपितु उसमें मानवीय पक्ष भी है। इन पदों में धार्मिक भावना कम, मानवतावादी पक्ष अधिक उभर कर आया। कवि ने भगवान को एक माध्यम बनाया है जिसके सामने वह अपने दुःखों का वर्णन कर सके और प्रार्थना कर सके कि उसके दुःखों का हरण करे। केवल वही एक माध्यम है, जिससे वह अपने मन की बात कह सकता है। यह एक नवीन प्रयोग था उस समय के अनुसार। भक्ति में शक्ति का प्रयोग तो पहले भी देखने को मिलता है परन्तु भक्ति में मानवीय पहलू इससे पहले देखने में नहीं आया। 'निराला' की 'राम की शक्ति पूजा' गुप्त जी के समय से बहुत बाद में आई। दुर्गा, भवानी, शारदा और लक्ष्मी की स्तुति से नारी शक्ति का परिचय दिया गया। स्त्री को शक्ति का केन्द्र मानकर उसकी आराधना की गई ताकि इस देश की गरीब जनता का उद्धार हो सके।

एक महत्त्वपूर्ण और रोचक तथ्य का 'गुप्त जी' ने अपने विषयवस्तु में समावेश किया वह है बच्चों के मनोरंजन के लिए कविताएँ लिखना। सिर्फ मनोरंजन के लिए ही नहीं बल्कि हिंदी वर्णमाला सिखाने के लिए भी 'गुप्त जी' ने 'खेल-तमाशा' और

'खिलौना' जैसी पुस्तकें लिखीं। जब नंदन और चंपक जैसी कार्टून पुस्तकों की सोच भी नहीं थी और ना ही दूरदर्शन के जैसा कोई माध्यम था तो ऐसे समय में 'गुप्त जी' सचित्र लयात्मक बाल पुस्तकें लिखकर नवीन प्रयोग कर रहे थे। मनोरंजन अथवा खेल-खेल के द्वारा मात्राओं की जानकारी वह भी सचित्र रुप में गुप्त जी ने दी। यह उनकी दूरदर्शिता का ही उदाहरण है। हिंदू धर्म के अनन्य उपासक होते हुए भी उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति की लाभप्रद बातों को ग्रहण किया। पाश्चात्य विद्वानों को सत्कार देने के लिए उन्होंने उन पर लेख और कविताएँ भी लिखीं। अंग्रेजी में बच्चों के लिए सचित्र पुस्तकें देखकर 'गुप्त जी' प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसलिए उन्होंने पहले बंगला में, फिर हिंदी में बच्चों के लिए सचित्र लयात्मक पुस्तकों की रचना की। भारतमित्र में कुछ कविताएँ बच्चों के मनोरंजन के लिए और ज्ञानवर्धन के लिए लिखीं जैसे- रेलगाड़ी, प्रभात, नया कुछ करना है, चुन्ना-मुन्ना, मुर्गी मेजर आदि। 'प्रभात' में गुप्त जी ने लिखा है-

''चटक रही बागों में कलियां, पंछी करते हैं रंगरलियां।
ग्वाल चले सब गायें लेकर, बालक पढ़ते हैं मन देकर,
महक रही है खूब चमेली, भौंरे आये जान अकेली।.....
उठो बालकों हुए सवेरा, दूर करो आलस का डेरा।
मुंह धोओ थोड़ा कुछ खाओ, फिर पढ़ने में ध्यान लगाओ।''[1]

'गुप्त जी' की प्रकृतिपरक रचनाओं में हमें कलात्मक सौन्दर्य तो दिखाई नहीं देता, परन्तु उसमें संयमित एवं मर्यादित श्रृंगार के दर्शन अवश्य होते हैं। एक ही भाव किसी भी कविता में आरंभ से अंत तक प्रयोग नहीं हुआ। जीवन संघर्ष की झलक हमें सभी कविताओं में मिल जाएगी। जिस जीवन संघर्ष को 'मैथिलीशरण गुप्त' ने अपनी रचनाओं में अपनाया है जिस संघर्ष को आगे चलकर 'नागार्जुन' और 'निराला' जैसे कवियों ने चित्रित किया है, उसे 'गुप्त जी' बहुत पहले ही अपनी रचनाओं/कविताओं

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.665

में प्रयोग कर चुके थे। इसी नवीनता के कारण ही उनकी रचनाएँ आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितनी उस समय थी। रीतिकाल में और भारतेंदु युग में भी बहुत से रचनाकारों ने ब्रज भाषा में श्रृंगारिक पद लिखे। परन्तु 'गुप्त जी' ने ना सिर्फ स्वयं ही इस तरह की रचनाओं को नकारा अपित अन्यों को भी इस तरह की रचनाएँ लिखने पर फटकार लगाई। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी की कविता 'प्रियवंदा' पर भी उन्होंने आलोचना की। श्रीधर पाठक को देश में अकाल पड़ने पर 'बादल' पर कविता लिखने को प्रेरित किया, जिससे निराश किसानों में धैर्य बंधे। राजनीतिक और सांस्कृतिक जागृति के काल में श्रृंगारिक रचनाओं को उन्होंने आत्महनन माना था। इसलिए उनकी रचनाओं में इस तरह के पद बिल्कुल नहीं दिखाई पड़ते। यह तत्कालीन परिस्थितियों में नवीन प्रयोग था जिसे आगे चलकर अनेक रचनाकारों ने अपनाया।

'गुप्त जी' का प्रकृति वर्णन एक विशेष प्रयोजन को लेकर आता है। बसंत के आगमन के साथ-साथ भारत के हर्षोल्लास की कामना की जाती है। गुप्त जी के काव्य में प्रकृति न तो प्रेयसी के रूप में आई है और न ही रहस्यमयी सत्ता के रुप में प्रकट हुई है। उसके सभी रुप गुप्त जी के काव्य में विद्यमान नहीं है। वह भली, बुरी, कठोर तथा सुन्दर रुप में गुप्त जी के काव्य में दिखाई देती है। परन्तु विशेष बात यह है कि प्रकृति के रुपों का वर्णन करते हुए मानव समाज का चित्रण हुआ है। 'वसन्तोत्सव' में कवि ने प्रकृति चित्रण के साथ समाज का चित्रण इस प्रकार किया है:-

''कहाँ गये वह गांव मनोहर परम सुहाने,
सबके प्यारे परम शान्तिदायक मनमाने।.....
एक साथ बालिका और बालक जहं मिलकर,
खेला करते और घर जाते सांझ परे पर।
पाप भरे व्यवहार पाप मिश्रित चतुराई,
जिनके सपने में भी पास कभी नहिं आई।''[1]

---

1 (सं.) कृष्णदत्त पालीवाल, बालमुकुन्द गुप्तः संकलित निबन्ध, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली, 2014, पृ.233

'गुप्त जी' के समकालीन अन्य रचनाकारों ने भी तीज त्योहारों पर लिखा परन्तु 'गुप्त जी' ने टेसू और जोगीड़ा के माध्यम से समकालीन शासकों पर जो व्यंग्य के तीर चलाए वह एक नवीन ही प्रयोग था। स्वदेशी आंदोलन, मल्लयुद्ध, आशीर्वाद, ताऊ और हाऊ, स्वागत, टेसू, जोगीड़ा, दिल्ली दरबार का वैभव आदि इन सब पर लोकगीतों की प्रचलित शैली में व्यंग्य है। राष्ट्रीय समस्याओं को क्षेत्रीय गीतों में पिरोकर जनता के सामने प्रस्तुत किया।

गुप्त जी ने मोरनी की मनोव्यथा का वर्णन पाँच सर्गों में सचित्र रूप से किया है। आनन्द, ध्यान, चिन्ता, विषाद और कायापलट में मोरनी के आनन्द से लेकर उसके शरीर त्यागने तक की कहानी कही है। यह प्रवृत्ति आगे चलकर हमें जयशंकर प्रसाद की 'कामायनी' और रामचन्द्र शुक्ल के निबंध संग्रह 'चिन्तामणि' में दिखाई देती है। गुप्त जी ने एक लघु रुप इस घटनाक्रम का प्रस्तुत किया है। यह नवीनता बिरले लोगों में ही दिखाई पड़ती है।

व्यंग्य और हास्य में 'गुप्त जी' का कोई सानी नहीं है। भारतेंदु युग से ही व्यंग्य की परम्परा आरंभ हो गई थी। प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी, प्रेमघन और स्वयं भारतेंदु ने अनेक व्यंग्यात्मक (हास्य से परिपूर्ण) लेख लिखे। परन्तु जो व्यंग्य और हास्य का अद्‌भुत समन्वय 'गुप्त जी' की रचनाओं में दिखाई देता है, वह अन्य कहीं नहीं। भंगेडी शिवशंभु शर्मा का नशा आज भी लोगों के दिलो दिमाग पर से नहीं उतरा है। लॉर्ड कर्जन के टेसू गीत, जोगीड़ा गीत और अन्य रचनाएँ में हास्य की अनोखी छटा दिखाई पड़ती है। सर सैयद का बुढ़ापा, तकरीर मुँहजबानी, उर्दू को उत्तर, पंजाब में लायल्टी, गुरूजी का हाल, भैंस का मरसिया, खल और साधु, भैंस का स्वर्ग आदि रचनाओं में हास्य का भरपूर मिश्रण दिखाई देता है। लॉर्ड कर्जन ने भारतीयों को झूठा कहा था तो गुप्त जी 'सच्चाई' नामक कविता में लिखा–

''हम जो कहैं वही कानून, तुम तो हो कोरे पतलून।
हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।''[1]

जिस समय ब्रज भाषा और खड़ी बोली का विवाद चल रहा था जिसमें दो धड़े बने हुए थे- एक ब्रज भाषा समर्थक जिसमें प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी जैसे रचनाकार थे और दूसरी तरफ खड़ी बोली समर्थकों में श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री जैसे रचनाकार थे। विवाद था गद्य और पद्य में एक ही भाषा का प्रयोग हो और वह खड़ी बोली हो। परंतु ब्रज भाषा समर्थक इसे मानने को तैयार नहीं थे। उनका तर्क था कि खड़ी बोली जिसका नाम इतना रुष्ट है, इसमें कविता नहीं हो सकती। परंतु इस विवाद से बहुत पहले सन् 1889-1890 में गुप्त जी खड़ी बोली में कविता कर चुके थे। भैंस का स्वर्ग, वसन्तोत्सव और सर सैयद का बुढ़ापा उनकी आरंभिक कविताएँ हैं जो कि खड़ी बोली में है। चौथी कविता 'पिता' ब्रजभाषा में है। ये सारी कविताएँ 'हिन्दोस्थान' में छपी थीं। इस दृष्टि से यदि देखें तो 'गुप्त जी' को खड़ी बोली का आरंभिक कवि भी कहा जा सकता है। यह उनका नवीन प्रयोग ही था जो उन्होनें पहले स्वयं किया और बाद में दूसरों को करने के लिए प्रेरित किया। महावीर प्रसाद द्विवेदी 'सरस्वती' में जाने से पहले अपनी कविताएँ गुप्त जी को भेजा करते थे। उनके पद्य में खड़ी बोली का प्रयोग बाद में है, गुप्त जी का उनसे 13 वर्ष पहले का प्रयास है। परंतु विडंबना यह है कि 'द्विवेदी जी' की गणना खड़ी बोली के निर्माणकर्त्ता के रुप में की जाती है परन्तु 'गुप्त जी' का नाम भी बहुत से साहित्यप्रेमी नहीं जानते। बालमुकुन्द के काव्य पर डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है, ''भारतेन्दु मंडल के अन्य कवियों की भांति बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने भी अपनी रचनाओं के माध्यम से अपने समाज एवं राष्ट्र का नेतृत्व करने का सफल प्रयास किया है। इन कवियों का काव्य कोरा शब्द विलास नहीं था, अपितु इनके हृदय की सच्ची भावनाएँ, वास्तविक उमंग एवं उदात्त लक्ष्य निहित है। विचार, भावना एवं अभिव्यंजना की दृष्टि से भी इनका काव्य उत्तरोतर अधिक व्यापकता एवं उच्चता प्राप्त

---

1 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.206

करता गयाय भारतेन्दु से बालमुकुन्द गुप्त तक की प्रगति इसे प्रमाणित करती है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि विचार और भाव की दृष्टि से बालमुकुन्द गुप्त जहाँ भारतेन्दु मण्डल के प्रतिनिधि हैं वहाँ खड़ी बोली के प्रयोग एवं रचना शैली की दृष्टि से द्विवेदी मण्डल के अत्यन्त निकट है। अतः इन्हें हम धारा की प्रगति के दो बिन्दुओं- भारतेन्दु और द्विवेदी के बीच की संयोजक रेखा मान सकते हैं।''[1]

युग बोधः-

वह काल राजनीतिक, सांस्कृतिक जागरण का था। सिर्फ वही रचनाएँ समसामयिक हो पाती हैं जिनका स्वरूप उस समय के अनुसार हो, जो तत्कालीन परिस्थितियों को दर्शाती हो। भारतेंदु से ही समकालीन दुर्व्यवस्थाओं को साहित्य में स्थान मिलना आरंभ हो गया थी। भारतेंदु की रचनाएँ 'अँधेर नगरी' तथा 'नीलदेवी', प्रतापनारायण मिश्र का नाटक 'भारत दुर्दशारुपक' तथा बालकृष्ण भट्ट का भारतीय अकाल पर प्रकाशित 'आल्हा', समकालीन पत्र-पत्रिकाएँ उस समय के युग बोध की याद दिलाती है। गुप्त जी की रचनाओं में उस युग की झाँकी दिखाई देती है। आज जिस प्रगतिशीलता की हम बात करते हैं वह प्रगतिशीलता गुप्त जी की रचनाओं में बहुत पहले दिखाई देती हैं। 'प्लेग की भूतनी' नामक कविता में गुप्त जी ने सीधे-सीधे अंग्रेजों को दोषी ठहराया है-

''आंवो आंवो रे अंगरेज।
ठहरो ठहरो भागे कहां? खाऊंगी पाऊंगी जहां,
फोड़ खोपड़ी भेजा खाऊं करके रेजारेज।।.....
कच्चे-कच्चे लड़के खाऊं युवती और जवान।
बूढ़े के नहिं हाथ लगाऊँ बूढ़ा बेईमान।।''[2]

---

1 डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय- खण्ड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.38

2 (संपादक) के.सी. यादव, बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-2, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.355

इन पंक्तियों के बारे में श्री रामधारी सिंह दिनकर का कहना है- ''जवानी का अर्थ है साहस, त्याग और प्रयोग करने की आकांक्षा है। बुढ़ापे की निशानी अगति, रक्षण और अनुदारता है। गुप्त जी का वोट जवानी के पक्ष में था।''[1]

अपने समय के विचारों, भावनाओं और विसंगतियों को गुप्त जी ने अपनी रचनाओं में उकेरा है। गुप्त जी की राष्ट्रीय भावना बड़ी बलवती थी। देश के बाहर अथवा अन्दर जो भी कुछ घटित होता था वह उनकी पैनी नजर से नहीं बच सकता था। उन्होंने अपनी रचनाओं में वर्तमान स्थितियों का यथासंभव वर्णन किया है। विषयवस्तु चाहे धार्मिक, राजनीतिक, अथवा सामाजिक हो उसमें जीवन संघर्ष का चित्रण अवश्य हुआ है। यह उस समय का युग बोध है जो तात्कालिक रचनाओं में दिखाई पड़ता है। देश अथवा समाज के विचारों तथा भावनाओं के प्रतिबिंब के रुप में समाज की भाषा का विशेष महत्त्व होता है। इसी भाषा में देश के विचारों को मान्यता मिलती है। इस भाषा को इसका स्थान दिलवाने में उस युग के साहित्यकारों/समाजसेवियों ने जी-तोड़ मेहनत की। हिंदी नागरी से संबंधित आंदोलनों में गुप्त जी ने बढ़-चढ़कर भाग लिया और अन्यों का समर्थन किया। हिंदी और नागरी के दर्जनों लेख उनकी रचनाओं में मिल जाएंगे। विशेष बात यह रही थी कि गुप्त जी उर्दू से हिंदी में आए थे। उर्दू के नामी लेखक और संपादक रह चुके थे। परंतु फिर भी समय की मांग के अनुसार इन्होंने हिंदी और नागरी को समर्थन दिया। परन्तु फिर भी 'गुप्त जी' ने उर्दू और मुसलमानों का विरोध नहीं किया। सन् 1900 ई0 में माननीय मदन मोहन मालवीय के नेतृत्व में हिंदी को कचहरियों में प्रवेश मिला तो मुसलमानों ने इसका विरोध किया। अवधपंच में 'उर्दू की अपील' नामक कविता छपी जो उर्दू के पक्ष में थी जिसका प्रसिद्ध पद इस प्रकार था- 'मैं शाहों के दरबारों की पाली हुई। हाय! इस कदर मेरी पाय माली हुई।'

(हिन्दुस्तान, सोमवार, 18 सितम्बर, सन् 1950, दिल्ली)

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बालमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशक समिति, हरिसन रोड़ कलकत्ता, 1950, पृ.395

गुप्त जी ने इसके उत्तर में भारतमित्र में 'उर्दू को उत्तर' नामक लम्बी कविता लिखी। जिसमें उर्दू के निराधार तर्कों का खंडन है। गुप्त जी ने कहा है-

''न बीवी बहुत जी में घबराए, सम्हलिये जरा होश में आइये।
कहो क्या पड़ी तुमपे उफताद है, सुनाओ मुझे कैसी फरियाद है।
किसी ने तुम्हारा बिगाड़ा है क्या? सुनूं हाल मैं भी उसका जरा।''[1]

गुप्त जी समय की नजाकत को देखते हुए सभी भाषाओं की एक ही लिपि अपनाने के पक्ष में थे, और वह लिपि नागरी ही थी, क्योंकि नागरी में ही सभी भाषाओं को लिखने की क्षमता थी। यदि सभी भाषाएँ एक ही लिपि में लिखी जाएगी तो जातीय एकता मजबूत होगी। जातीय एकता से राजनीतिक एवं सांस्कृतिक विचारधारा का एक समान रुप से प्रचार-प्रसार होगा। राजनीतिक और सांस्कृतिक जागरण के इस काल में 'गुप्त जी' अपनी कविताओं के माध्यम से नवजागरण का बीज बो रहे थे।

'गुप्त जी' की धार्मिक एवं राजनीतिक कविताओं में तो युग बोध दिखाई ही देता है, परन्तु उनकी सामाजिक कविताओं में जीवन विषमता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में जकड़ी जनता को भारतीय संस्कृति की तरफ आकर्षित करने का प्रयास किया गया है। ये सभी कविताएँ व्यंग्यात्मक रूप में है। देशोद्धार की तान, कलकत्ते की ग्वालिन, जनाने पुरुष, पतिव्रत, बंगदेशीय कोल्हू, सुसभ्य राजा, सभ्य बीवी, जोरूदास, आजकल का सुख आदि इन कविताओं में पाश्चात्य संस्कृतियों के रंग में रंगे भारतीयों पर व्यंग्य किया है। यह दशा वर्तमान युग में भी ज्यों की त्यों है। गुप्त जी की की इसी भावना को व्यक्त करते हुए डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त ने 'हिंदी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास' में लिखा है, ''वस्तुतः ऐसा सुधारवाद जिसमें अपना सब कुछ छोड़ दिया जाये या बहा दिया जाये इस युग की रूचि के

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.700

अनुकूल नहीं थाय वे सुधार चाहते हैं पर अपनेपन को खोकर नहीं। दूसरे शब्दों में वे अपनी ही राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक परंपराओं का नवरूपान्तर करना चाहते थे, उनसे सर्वथा विच्छिन्न होकर उनके स्थान पर विदेशी परंपराओं की प्रतिष्ठा नहीं करना चाहते थे, जबकि नवशिक्षितों में विदेशी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रति अंध श्रृद्धा की प्रवृत्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही थी जिसका चरम रूप आज देखा जा सकता है। आज हम राजनीतिक दृष्टि से तो स्वतंत्र हो गये किन्तु मानसिक दृष्टि से विदेशी संस्कृति, विदेशी साहित्य और विदेशी भाषा के गुलाम हैं।''[1] गुप्त जी ने जो 100 वर्षों से भी ज्यादा पहले लिखा वह आज भी प्रासंगिक है। हिंदी आज भी अपने वर्चस्व की लड़ाई लड़ रही है। युवा वर्ग पाश्चात्य संस्कृति की चकाचौंध में अपनी संस्कृति को भुलाए बैठा है। गुप्त जी ने इस दिशा में कट्टरता का परिचय न देकर विदेशी संस्कृति के अच्छे प्रभाव ग्रहण करने को कहा। हिंदू धर्म का आदर करते हुए उन्होंने अन्य धर्मों का अनादर कभी नहीं किया। जो बात हिंदू धर्म में बुरी लगी या अन्य धर्मों में उसका भी मजाक उड़ाया है, उसे इस प्रकार से लिखा है-

''अल्ला गाड अरु निराकार में भेद न जानो भाई रे।
इन तीनों को जी में अपने जानो भाई-भाई रे।।
गाड कभी मूरत नहिं पूजी अल्ला ने तुडवाई रे।
निराकार ने गाली देकर सारी कसर मिटाई रे।।
अल्ला करे न चौका चूल्हा गाड मेज बिछवाई रे।
निराकार ने देखादेखी अपनी जाति मिटाई रे।।''[2]

गुप्त जी बंगला, उर्दू, फारसी, संस्कृत, हिंदी और अंग्रेजी समेत छह भाषाओं के जानकार थे। परन्तु उन्होंने समय की मांग के अनुसार हिंदी में अपना रचना कार्य

---

1 डॉ. गणपति चन्द्रगुप्त, हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, द्वितीय- खण्ड, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2010, पृ.37

2 (सं.) डॉ. नत्थन सिंह, बालमुकुंद गुप्त ग्रंथावली, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2008, पृ.199

किया। गुप्त जी की शिक्षा 'उर्दू' में हुई थीं अपने लेखन कार्य की शुरूआत उन्होंने उर्दू में ही की। परन्तु हिंदी न जानते हुए भी हिंदी पत्रकारिता में कूद पड़े। पं. दीन दयाल शर्मा के निमन्त्रण पर 'हिन्दोस्तान' से अपनी हिंदी सेवा आरंभ की। उस युग की मांग के अनुरुप हिंदी में अपना लेखन कार्य आरंभ किया। हिंदी का ऐसा रूप व्यवस्थित किया जिसमें सभी भाषाओं के शब्द हों। गुप्त जी का विचार था कि अन्य भाषाओं को हिंदी में सम्मिलित करने पर हमें परहेज नहीं करना चाहिए। हिंदी का ऐसा रूप व्यवस्थित हो जिससे सभी उसे आसानी से समझ सके। उर्दू का चुलबुलापन उनकी भाषा में दिखाई देता है। गुप्त जी की भाषा का यह रूप आगे चलकर गणेशशंकर, विद्यार्थी, प्रेमचंद आदि की भाषा में दिखाई देता है। हिंदी के संबंध में जो गुप्त जी ने बहुत पहले लिखा वह आज भी लागू होता है, ''100 वर्ष तक हिंदी हितैषी लोग उर्दू के बिना हिंदी में उचित उन्नति नहीं कर सकते। इसलिए हिन्दुओं में उर्दू के अच्छे-अच्छे ज्ञाता होने आवश्यक हैं। बडी कठिनाई यह है कि दोनों (हिंदी-उर्दू के दो रूप) एक-दूसरे को न पहचानते हैं न पहचानने की चेष्ट करते हैं। हिंदी के हितैषी आज भी इसकी चेष्टा नहीं कर सके हैं।'' (नवजीवन, लखनऊ, रविवार, 1 अक्टूबर, 1950)

5.2 चरित चर्चा एवं इतिहास दृष्टिः

हिंदी/उर्दू के साहित्यकारः-

भारतेन्दु की प्रेरणा से बाबू बालमुकुंद गुप्त चरित लेखन की ओर अग्रसर हुए थे। भारतेन्दु से पूर्व हिंदी साहित्य में चरित लेखन न के बराबर था। गुप्त जी ने हिंदी सेवा और देश सेवा के लिए चरित लेखन का बीड़ा उठाया था। उनके लिखे हुए बाईस चरित लेखन देखने में आए हैं। जिनमें से कुछ शोक संवाद के साथ मृत्यु के तत्काल पश्चात् दी गई श्रृद्धांजलियाँ हैं और कुछ जीवित व्यक्तियों/इनके समकालीन व्यक्तियों के चरित लेखन हैं। जीवित व्यक्तियों में पं. गौरीदत्त, मुंशी देवी प्रसाद, मौलवी मुहम्मद हुसैन आजाद आदि हैं। शोक संवाद के साथ मृत्यु के तत्काल पश्चात्

लिखे गए में पं. अम्बिका दत्त व्यास, पं. देवी सहाय, पाण्डे प्रभुदयाल, पं. माधवप्रसाद मिश्र आदि हैं। हिंदी के साहित्यकारों के जीवन चरित्र लिखने के पीछे ही एक ही उद्देश्य था कि हिंदी सेवा के महत्त्व को, हिंदी भाषियों को परिचित कराना। जिन हिंदी साहित्यकारों को गुप्त जी ने परिचित करवाया था वे हैं- पं. अम्बिका दत्त व्यास, पं. गौरीदत्त, पं. देवीसहाय, पं. प्रभुदयाल पाण्डे, बाबू रामदीन, पं. देवकीनन्दन तिवारी, बाबू योगेन्द्र चन्द्र बसु, पं. प्रतापनारायण मिश्र, मुन्शी देवीप्रसाद, पं. माधवप्रसाद मिश्र, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती, मुंशी पीताम्बर प्रसाद इत्यादि। इनमें से बहुत से चरित लेखन शोक श्रृद्धाजंलियाँ हैं। इनमें जीवन से संबंधित जानकारियाँ देने के साथ भावुकता का समावेश भी है। पं. अम्बिका दत्त व्यास के बारे में लिखते हैं- ''क्या लिखें उनकी किस-किस चीज की आलोचना करें? चित व्याकुल है। आँखों से आँसू बहे चले आते हैं।''[1] इसी प्रकार पं. माधवप्रसाद मिश्र के निधन पर उन्होंने अपने श्रद्धासुमन अर्पित किए। श्रृद्धांजलि देने के साथ-साथ उन्होंने चरित नायकों का सम्पूर्ण जीवन वृत्त भी संक्षिप्त रुप से खींचा है।

पं. माधव प्रसाद मिश्र के बारे में लिखा है- ''बस, अब यही बाकी है, कि तू मर जाय तो एक बार तुझे खूब रो लें और हम मर गये तो हम जानते हैं कि पीछे तू रोवेगा।''[2]

गुप्त जी ने इन शोक संवादों के आरंभ में तो चरित नायकों की मृत्यु की दु:खद सूचना दी है बीच में उनके जीवन का वर्णन किया है और अन्त में आँसुओं से भीगी हुई शोकपूर्वक श्रृद्धाजंलियाँ दी हैं।

पं. देवीसहाय के शोक सन्देश में गुप्त जी ने लिखा है, ''इस देश का जो कुछ चला जाता है वह फिर नहीं लौटता। पंडित देवीसहाय जी का स्थान पूरा करने के

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.23

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.36-37

लिए, वैसा योग्य पुरुष दिखाई नहीं देता। उनमें अनेक गुण थे, जो कुछ करते थे, आडम्बर रहित होकर करते थे।''[1] इसी प्रकार पाण्डे प्रभुदयाल की शोक श्रृद्धाजंलि है जिसमें संक्षिप्त रूप से उनका जीवन वृत्त खींचा है।

कुछ जीवन चरित उन व्यक्तियों के हैं जो गुप्त जी ने अपने समकालीनों के मृत्यु के काफी समय पश्चात् लिखे हैं जो शोक श्रृद्धांजलियों की श्रेणी में नहीं आती। ऐसे जीवन चरित में पं. प्रतापनारायण मिश्र, पं. देवकीनन्दन तिवारी, बाबू रामदीन, योगेन्द्रचंद्र बसु आदि के हैं। इन जीवन चरितों में गुप्त जी ने विस्तृत जीवन वर्णन किया है। आरंभ में कुल, गोत्र, वंश, जन्मस्थान आदि की विस्तृत जानकारी दी है। फिर बाल्यावस्था, किशोरावस्था, विवाह, शिक्षा आदि की पूरी जानकारी देने का प्रयास किया है। बीच-बीच में में नायक के गुण, स्वभाव, उदारता, धार्मिकता, कृतित्व, उपलब्धियाँ, रचनाएँ, बीमारियाँ तथा आर्थिक कठिनाईयों का वर्णन किया है। अंत में मृत्यु का मार्मिक वर्णन है। चरित चर्चा को व्यवहारिक बनाने के लिए किसी घटना का नाटकीय प्रस्तुतीकरण किया है। योगेन्द्र चंद्र बसु के बारे में जानकारी देते हुए गुप्त कहते हैं- ''योगेन्द्र बाबू का शरीर बहुत भारी था, मामूली कुर्सी पर बैठ नहीं सकते थे, रंग अत्यंत काला था। भारी होने के कारण चल-फिर बहुत ही कम सकते थे, आवाज साफ नही थी। बहुत रूक-रूक कर बातें करते थे। उनकी शक्ल देखकर कोई नहीं कह सकता था कि यह बड़े रसिक और नामी सुलेखक हैं। उनकी रसिकता इस दर्जे तक थी कि बात करते समय स्वयं अपने रंग रुप की दिल्लगी किया करते थे। बड़े ही मिष्ट भाषी और सीधे-सादे थे।''[2]

पं. देवकीनन्दन तिवारी के रंग-रुप, गुण-स्वभाव का परिचय गुप्त जी ने संक्षिप्तता परन्तु सुन्दरता से दिया है। गुप्त जी कहते है- ''लम्बे पतले आदमी थे, रंग

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.25

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.46

सांवला और उमर ढलती हुई। साथ कई एक शिष्य थे, जो उनकी बनाई पाठशाला में पढ़ते थे। अपनी बनाई पोथियों की गठरी बगल में रखते थे, उनको बेचते और बांटते भी जाते थे। एक मोटी कमरी पहने हुए थे, सिर पर एक गोल बडी भद्दी टोपी थी। जो उस प्रान्त के पुरानी चाल के ब्राह्मण बहुधा पहना करते हैं, पर बड़े तेजस्वी थे। बड़े-बड़े पण्ड़ितों और उपदेशकों ने महामण्डल से आने जाने का भाड़ा लिया था, पर उन्होंने नहीं लिया। कहा, इसी तरह काम चला जाता है। ऐसे कामों में भाड़ा लेना मैं पसन्द नहीं करता।''[1] गुप्त जी ने उनकी साहित्यिक कृतियों में से एक का ही वर्णन किया और अन्य के बारे में अगले लेख की बात कही। पूरी जानकारी न देना यह चरित चर्चा का कमजोर पहलू रहा है। बाबू रामदीन के बारे में भी उन्होंने साहित्यिक कृतियों की अधूरी जानकारी दी और कहा, ''हरिश्चन्द्र कला के सिवा उन्होंने कई एक पुस्तक बड़े काम की छापी, उनमें से एक तुलसीकृत रामायण में क्षेपक मिला-मिला कर छापने वालों ने उसे एक रही पुस्तक बना दिया है। खड़गविलास प्रेस ने उसे शुद्ध करके मानों रत्नों को कंकड़ों से अलग कर लिया। इसकी बात फिर कभी कहेंगे।''[2]

पं. प्रतापनारायण मिश्र का जीवन-चरित अन्य हिंदी लेखकों से बड़ा है। इसमें आरंभ में गुप्त जी ने प्रतापनारायण मिश्र की जीवनी लिखने के लिए होने वाली कठिनाईयों का वर्णन किया है। अगले पहरे में प्रताप चरित्र लिखा है परन्तु इसमें प्रताप के चरित्र का वर्णन न करके पूर्व पुरुषों का अति सूक्ष्मता से वर्णन किया है। आगे वंश परिचय, शिक्षा पर आकर लेख समाप्त किया है। लेख लम्बा है परन्तु आवश्यक बातें छूट गई हैं। शिक्षा में ही उन्होंने प्रताप नारायण मिश्र के हिंदी और उर्दू प्रेम का जिक्र किया है। ''हिंदी का प्रतापनारायण मिश्र को बड़ा शौक था। हिंदी किताबें और हिंदी अखबार का दिन-रात पढ़ा करते थे। जो पोथियाँ या अखबार रद्दी समझ

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.151

2 वहीं, पृ.149

के फेंक दिये जाते थे, उन्हें भी वह पढ़ डालते थे। उनके अक्षर एक विशेष सूरत-शक्ल के थे। पंक्तियाँ सीधी नहीं लिख सकते थे। टेढ़ी भी यहाँ तक लिखते थे कि दो-दो अढ़ाई अंगुल का फासिला पड़ता था और फिर उसके नीचे टेढ़ी-टेढ़ी पंक्तियाँ लिखे चले जाते थे। उर्दू-हिंदी में ऐसा अधिक करते थे, अंग्रेजी में कम।..... हिंदी वह कैसी जानते थे यह बात यहाँ नहीं बताई जा सकती, वह आगे चलकर मालूम होगी। उनकी हिंदी ही को लेकर उनकी जीवनी लिखी जाती है।''[1]

इन पंक्तियों को देखकर लगता है कि गुप्त जी ने शायक अधूरा ही जीवन चरित लिखा है आगे के लेखों में वे उसे पूर्ण करना चाहते हों जो वो नहीं कर पाए।

जीवित व्यक्तियों के जीवन चरितों में गुप्त जी के समकालीनों के जीवन चरित हैं। पं. गौरीदत्त, मुंशी देवीप्रसाद, पं. अमृतलाल चक्रवर्ती, मुंशी पीताम्बर प्रसाद आदि हैं। इनका गुप्त जी ने बहुत ही संक्षिप्त वर्णन किया है और इनकी मुख्य विशेषताओं को ही उभारा है। पं. गौरीदत्त की विशेषताओं के बारे में गुप्त जी ने लिखा है- ''मेरठ शहर में नागरी का प्रचार करना काले पत्थर पर पेड़ उगाने से कम नहीं है। वह उर्दू-फारसी का दास मेरठ शहर, मुसलमानी सभ्यता का चेला मेरठ नगर जहाँ के हिन्दू नहीं ब्राह्मण तक दाढ़ी रखना पसन्द करें, वल्लह, सुबहान अल्लह, मासाअल्लह और इन्शा अल्लह की भरमार, जहाँ दिन-रात गजल, शेर मसनबी यहाँ तक कि मरसिये अच्छे-अच्छे पंडितों के मुख पर जारी, ऐसे मेरठ शहर में नागरी फैलाने वाले पंडितों, गौरीदत्त जी की पूजा करने को किसका जी न चाहेगा?''[2]

पं. अमृतलाल चक्रवर्ती का भी गुप्त जी ने बहुत ही संक्षिप्त रुप से परन्तु सारगर्भित लेख लिखा है। हिंदी अखबारों के प्रचार-प्रसार में उनका जो योगदान है उसी को गुप्त जी ने अंकित किया है। गुप्त जी ने लिखा है- ''आप ही की चेष्टा से

---

1 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.76

2 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.140

हिंदी अखबारों को आज हजारों ग्राहक मिलने लगे हैं। आपकी लेखनी के जोर से उर्दू पढ़ने वालों को हिंदी की ओर खींचा। हजारों उर्दू-दास हिंदी के चेले हुए।..... इसमें कुछ संदेह नहीं है कि पण्डित अमृतलाल जी पथ न दिखाते तो हिंदी की उन्नति अभी और अंधेरे में पड़ी रहती। हिंदी पर, हिन्दुस्थानियों पर उनका बड़ा अहसान है।''[1]

उर्दू के जिन साहित्यकारों का गुप्त जी ने जीवन चरित लिखा है उनमें से मौ0 मुहम्मद हुसैन आजाद, मुंशी सज्जाद हुसैन, मुंशी देवीप्रसाद, मुंशी पीताम्बर प्रसाद आदि हैं। इनके जीवन एवं साहित्य के कार्य से प्रभावित होकर गुप्त जी ने इन पर जीवन चरित लिखा। आजाद की पुस्तकों का गुप्त जी ने विस्तृत विवरण दिया है। आजाद की विशेष खूबी को उभारते हुए गुप्त जी ने कहा है, ''वह उड़े तो आसमान के तारे तोड़ ला सकता है और नीचे की तरफ जाय तो समुद्र की काई निकाल ला सकता है। उसका वही कलम 'आबेहयात' और 'नैरंगे ख्याल' लिखकर उर्दू के फजला को हैरत मे डाल सकता है और वही कलम उर्दू की पहिली और मीठी लोरी लिखकर छोटे-छोटे बच्चों को हँसा और चुप करा सकता है।..... वह जिस खूबी से आला दर्जे के ख्याल को कलमबद्ध कर सकता है उसी खूबी से बहुत अदना और मामूली दर्जे की बातें भी कर सकता है।''[2]

आजाद के पिता 'मुहम्मद बाकर' पर हुए अंग्रेजों के अत्याचार को भी गुप्त जी ने बखूबी इस जीवन चरित में उभारा है। आजाद की पुस्तकों के बारे में विस्तृत रूप से बताया है कि किस कदर वे बच्चों को आसान उर्दू सीखने में मददगार है। शिक्षा विभाग में उनके योगदान को अंकित किया है। हिंदू-मुसलमानों के मेल-जोल को भी इस चरित चर्चा में दिखाया है।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.176

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.98-99

साम्प्रदायिक सौहार्द के बढ़ाने के लिए 'अवध पंच' के संपादक 'मुंशी सज्जाद हुसैन' के बारे में लिखा और वर्तमान उर्दू की दशा पर निराशा जताई। गुप्त जी ने लिखा है- ''वह हिंदू-मुसलमानों को एक दृष्टि से देखते हैं। सदा अपने अखबार द्वारा उन्होंने दोनों में मेल रखने की चेष्टा की। उन अखबारों का कभी साथ न दिया जो एक समूह की तरफदारी और दूसरे से विरोध करने को बहादुरी समझते हैं।''[1] उर्दू-हिंदी के साहित्य विद् और इतिहास विद् मुंशी देवी प्रसाद के बारे में गुप्त जी ने विस्तृत रूप से लिखा। उनकी पुस्तकों की विस्तृत जानकारी इनके चरित लेख में प्राप्त होती है। साहित्य सेवा और इतिहास से संबंधित जानकारियों के लिए मुंशी देवी प्रसाद के योगदान को गुप्त जी ने अंकित किया है। हिंदी सेवा की ओर विशेष ध्यान दिलाने के लिए गुप्त जी कहते हैं, ''हिंदी की ओर आपका ध्यान थोड़े ही दिन से हुआ है। कई एक विद्वानों ने आपसे आग्रह किया कि- हिंदी के भण्डार में इतिहास की बहुत कमी है। आप इस कमी को दूर करते तो बड़ा उपकार होता।''[2]

मुंशी देवी प्रसाद के पुत्र मुंशी पीताम्बर प्रसाद पर भी गुप्त जी ने छोटा सा चरित लेख लिखा है और वही आग्रह किया जो इनके पिता को किया था कि हिंदी की तरफ ध्यान आकर्षित किया जाए। उर्दू ज्ञान की तारीफ भी गुप्त जी ने की है परन्तु हिंदी में अभ्यास बढ़ाने की सलाह भी दी है।

विदेशी चिंतकों का महत्त्वः-

हिंदी-उर्दू के साहित्यकारों के साथ-साथ गुप्त जी ने विदेशी चिंतकों के महत्त्व को भी उजागर किया है। शेखसादी, मैक्समूलर और हरबर्ट स्पेन्सर के महत्त्व को चरित चर्चा के माध्यम से सबके सामने लाया है। फारसी कवि 'शेखसादी' का नाम बड़े ही आदर से लिया है। भारतवर्ष के साथ-साथ अन्य देशों में भी उसकी शोहरत

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खंड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.209

2 वहीं, पृ.172

की चर्चा, 'गुप्त जी' ने की है। यद्यपि 'शेखसादी' ने हिंदू, यहूदी तथा ईसाई धर्म की आलोचना की है, परन्तु फिर भी गुप्त जी ने उसकी विद्वता तथा नीति वर्णन की प्रशंसा की है। 'शेखसादी' ने सिर्फ मुसलमानों तथा मुस्लिम धर्म की तरफदारी की थी परन्तु गुप्त जी ने सांप्रदायिक सौहार्द का परिचय देते हुए उनकी प्रशंसा में लेख के आरंभ में ही लिखा- ''कुछ ऐसे लोग हैं कि जो जीते हैं, पर लोग नहीं जानते कि वह जीते हैं या मर गये। कुछ ऐसे हैं कि जो मरकर मर गये और कुछ जीकर जीते हैं। पर कुछ ऐसे भी हैं कि सैंकड़ों साल हुए मर गये, भूमि उनकी हड्डियों को कब्र समेत चाट गई, तथापि वह जीते हैं। फारिस के मुसलमान कवियों में 'शेखसादी' भी वैसे ही लोगों में से हैं।''[1] जीवन चरितों में साहित्य के साथ-साथ गुप्त जी इतिहास की जानकारी भी देते हैं।

शेखसादी की तीन पुस्तकों- गुलिस्तान, बोस्तान और करीमा का इतिहास एवं महत्त्व भी गुप्त जी ने उजागर किया है।

चरित लेखन के संदर्भ में गुप्त जी ने नायक के आत्मचरित को अधिक महत्त्व दिया है। आत्मचरित जीवन चरित का महत्त्वपूर्ण अंग होता है। 'मेक्समूलर' के जीवन और अवदान का भारतवासियों के लिए विशेष महत्त्व है। इसी बात को दर्शाने के लिए उन्होंने कहा है- ''जो कुछ तो, मेक्समूलर का जितना हम आदर करें, कम है। वह भारतवासी नहीं थे, आर्य-सन्तान नहीं और आर्य धर्मावलम्बी नहीं थे, यहाँ तक कि आर्य-देश में पैदा भी नहीं हुए थे, ऐसे मनुष्य का जीवन, संस्कृत की महिमा-प्रचार करने में बीत जाय, यह एक बड़ी ही विलक्षण बात है।''[2]

जर्मनी देश के निवासी होते हुए भी मेक्समूलर ने संस्कृत के साथ-साथ वेद, बौद्ध धर्म आदि पर आलोचनाएँ लिखीं। उन्हीं का छपा हुआ ऋग्वेद इस समय (गुप्त

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.227

2 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.26

जी के समय) में भारत के पंडितों के पास पाया जाता है। परन्तु साथ-साथ उन लोगों को भी नसीहत दी है जो कि अंग्रेजी सभ्यता के आवरण में अपनी संस्कृति को भूल बैठे हैं। मेक्समूलर को आदर और ऐसे लोगों को नसीहत देते हुए उन्होंने कहा है- ''उन्होंने कृस्तान होकर संस्कृत का आदर किया, उनकी सारी उमर संस्कृत की आलोचना में बीती, तिस पर भी वह पक्के कृस्तान थे, अपने कृस्तान धर्म को सबसे ऊँचा कर दिखाने में उन्होंने कमी नहीं की। हमारे देश में अंगरेजी आदि पढ़कर लोग पागल हो जाते हैं। ऐसे लोगों को देखना चाहिए कि क्योंकर मेक्समूलर संस्कृत चर्चा करते हुए संसार भर के धर्मों की चर्चा करते हुए भी अपने कृस्तान धर्म में दृढ़ थे।''[1]

'हरबर्ट स्वेन्सर' के बारे में गुप्त जी ने व्यवहारिक होकर लिखा। स्पेन्सर इंग्लैंड का एक दार्शनिक था जिसने अपनी आत्मकथा लिखी थी। दर्शनशास्त्र की आलोचना ही स्पेन्सर का मुख्य काम था। जीवन चरित में सम्पूर्ण जीवन का उल्लेख होता है। परन्तु गुप्त जी द्वारा लिखे गए चरितों में पारिवारिक जीवन के प्रति अवहेलना पाई जाती है। केवल 'हरबर्ट स्पेन्सर' के अविवाहित रहने की चर्चा एक पूरे प्रसंग में की है। जीवन का व्यक्तिगत पक्ष भी सम्पूर्ण जीवन का एक पहलू है। चरित्रिक विशेषताओं की तरफ गुप्त जी का ध्यान अधिक रहा है। जिससे जीवन चरित का एक पक्ष अधूरा ही रह जाता है। यह उनके चरित लेखन का एक कमजोर पहलू ही है। विशेषताओं के साथ-साथ चरित नायक की कमियों को भी गुप्त जी ने उभारा है, ''उसने कभी कोई उपाधि न ली, कभी राजा का दर्शन करने न गया, कभी धनी की सेवा न की और न किसी का सभापति हुआ। कभी खुली वक्तृता न की, कभी अपनी किसी को आलोचना नहीं करने दी, कभी किसी समाज या मंडली से कोई सम्मान या मर्यादा का पद न

---

1 (संपादक) ओंकार शरद, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ चिट्ठे और खत, विविध भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1981, पृ.28

लिया। कभी किसी से कुछ न मांगा और कभी मित्र से रुपये आदि की सहायता न ली। सामाजिकता या लौकिकता उसमें न थी।''[1]

इस लेख में गुप्त जी ने 'हरबर्ट स्पेन्सर' के 'आत्मचरित' को ही केन्द्र में रखा है। उक्त लेख में पात्रों का जीवन एवं चरित्र को प्रमाणिक रूप से उपस्थित करने की चेष्टा दिखाई पडती है।

इतिहास से सम्बन्धित व्यक्तियों जैसे अकबर, टोडरमल शाइस्ता खाँ जैसे शासकों पर भी गुप्त जी ने अपनी लेखनी चलाई है। 'बाबू बालमुकुंद गुप्तः एक मूल्यांकन' में श्री प्रेमसैन सिंह का कहना हैः- ''इतिहास प्रसिद्ध, पात्रों, जैसेः 'अकबर बादशाह' 'टोडरमल', 'शाइस्ता खाँ' प्रभृति व्यक्तियों पर भी गुप्त जी ने लिखा है। उपर्युक्त निबन्धों का रूप गठन काफी पुष्ट है। उनमें तथ्यों की सुसम्बद्ध योजना पर ही लेखक की दृष्टि अधिक रही है। भाषागत सरलता उनकी अपनी विशेषता है।''[2] बालमुकुंद गुप्त एक जागरूक देशभक्त थे। अपनी इसी भावना के कारण ही उन्होंने अकबर जैसे महान शासक का जीवन चरित खींचा। जिस समय गुप्त जी ने अकबर का जीवन चरित लिखा उस समय अकबर की त्रिशतवार्षिकी मनाने की योजना चल रही थी परन्तु बंग-भंग के कारण वह पूरी न हो सकी। इस जीवन चरित में उन ऐतिहासिक परिस्थितियों का विस्तृत वर्णन गुप्त जी ने दिया है, जिसके कारण अंग्रेज इस देश में आए। अंग्रेजों की दशा उस समय क्याथी? अकबर के समय भारतीय प्रजा कितनी समृद्ध और खुशहाल थी। हिन्दू-मुस्लिम सौहार्द के लिए तो अकबर की मिशाले आज भी दी जाती है। यह गुप्त जी की धर्म निरपेक्षता का प्रमाण है। अकबर के नौ रत्नों का जिक्र गुप्त जी ने किया है। ये नौ रत्न अपने-अपने क्षेत्र में माहिर थे और हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही उन नवरत्नों में शामिल था।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.240

2 (संपादक) कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री, बालमुकुन्द गुप्तः एक मूल्यांकन, बाबू बालमुकुंद गुप्त शत वार्षिकी समारोह समिति, कलकत्ता, 1965 पृ.49

गुप्त जी ने लिखा है- ''अकबर दुनिया के नेकनाम बादशाहों में से था। उसने नेकी और नेकनामी के बड़े-बड़े काम किये, जिनके कारण आज तक लोग उसका नाम बड़े प्रेम से लेते हैं। उसे लोगों ने 'सुलहकुल' की उपाधि दी। जिसका अर्थ है सबसे मिलकर चलने वाला। अकबर में सबसे बड़ा गुण यह था कि उसे किसी जाति, किसी सम्प्रदाय और किसी धर्म से द्वेष नहीं था। हिन्दुओं को उसने ऐसा प्रसन्न किया कि वह उस पर जी-जान से मोहित थे। हिन्दुओं ने उसे 'जगदगुरू' तक की उपाधि दे डाली थी। हिन्दी और संस्कृत पुस्तकों में अकबर की बहुत कुछ प्रंशसा लिखी गई है।''[1] अकबर कालीन वस्तुओं के भाव भी गुप्त जी ने दिए है और उसकी तुलना आज (वर्तमान अंग्रेज शासकों) के समय से की है। अकबर के समय में देश कितना समृद्ध था और अंग्रेजों की स्थिति कितनी हीन थी और गुप्त जी के समय तक देश की स्थिति कितनी हीन हो गई थी, इस अन्तर्विरोध को उभारने के लिए 'जार्ज न्यूबरी' का वृतान्त ने गुप्त जी ने लिखा है। दोनों समय की तुलना करते हुए लेखक ने लिखा है:- ओह! तीन सौ साल के उस समय और आज के समय में कितना अन्तर है। उस समय के भारतवर्ष और आज के भारतवर्ष में कितना अन्तर है। अंग्रेजों के उस समय के प्रताप और आज के प्रताप में कितना अन्तर है। उस समय विलायत की रानी ने भारत के बादशाह से अपनी कई आदमियों को सुखपूर्वक दरबार में रखने की प्रार्थना की थी।''[2]

चरित साहित्य में टोडरमल एक वर्ग विशेष का प्रतिनिधित्व करता है। परन्तु वह सम्पूर्ण व्यापारी वर्ग के लिए आदर्श भी है। अकबर के नौ रत्नों में से एक रत्न राजा टोडरमल भी थे। अकबर के चरित चित्रण में गुप्त जी ने इनकी प्रंशसा की है। इनके चरित लेखन में व्यापारी वर्ग से सम्बन्धित हुण्डी का स्वरूप, सराफ, चौधरी,

---

1 (संपादक) निर्मला जैन, रेखा सेठी, निबंधों की दुनियाः बालमुकुंद गुप्त, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2009, पृ.164-165

2 (संपादक) सत्यप्रकाश मिश्र, बालमुकुंद गुप्त के श्रेष्ठ निबंध, लोकभारती प्रकाशन, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद, 2005, पृ.57

साहूकार के लक्षण, बहीखाता लिखने की विधि, व्यापार नीति आदि की चर्चा की है। इनकी मुख्य विशेषता यह है कि टोडरमल ने इस व्यापार ज्ञान को छन्दों में बाटा है। इसके अतिरिक्त गुप्त जी ने टोडरमल की अन्य विशेषता उनकी बहादुरी और उनकी कविता की भी चर्चा की है। टोडरमल के चरित लेखन में गुप्त जी कुछ संशय में थे इसलिए वे अन्त में कहते हैः- '' कहते है कि बहीखाता फुरती से लिखा जावे इसके लिए टोडरमल ने मात्रा-विहीन मुडिया अक्षर चलाकर उनका नाम सराफी रखा था। क्या वैश्य, क्या खत्री और क्या दूसरे सराफे वाले वही अक्षर लिखते है, इससे सब विद्या भूल गये। नागरी को इन्हीं अक्षरों ने चौपट किया। यदि यह बात सत्य हो तो टोडरमल के सिर कंलक समझिये। बिरादरी की शक्ति को टोडरमल ने इतना बढ़ाया था कि विवाह आदि में उनके गीत गाये जाते है। ऐसे पुरूष ने क्या मुडिया अक्षर चलाये होंगे?''[1]

इस लेख से यही ज्ञात होता है कि इसमें कुछ अपूर्णता रह गई है। शायद आगे गुप्त जी लिखना चाहते थे परन्तु वह पूर्ण नहीं हो सका।

शाहस्ता खाँ के जीवन चरित में गुप्त जी ने जीवन के उस हिस्से को शामिल किया है जिसमें शाइस्ता खाँ का अंग्रेजों से विरोध दिखाया गया है। अंग्रेजों की चालाकी और कूटनीति को भाँप कर शाइस्ता खाँ ने अंग्रेजों का व्यापार करना मुश्किल कर दिया था। परन्तु प्रजा के साथ उसने बहुत उदारता दिखाई थी। रोजमर्रा की चीजों को बहुत सस्ता कर दिया था। यद्यपि औरंगजेब के कहने पर उसने हिन्दुओं और यूरोपियन जातियों पर जाजिया कर लगाया था, परन्तु वह न्यायप्रिय और दयावान प्रकृति का शासक था। उसके राज्य में प्रजा सुखी थी। इस बात का उल्लेख गुप्त जी ने 'शाइस्ता खाँ का खत फुलर साहब के नाम' के निबन्ध में किया है। अंग्रेजों से उसकी तुलना की है। गुप्त जी 'शाइस्ता खाँ' की इसी विशेषता को दर्शाया है। इसके

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.68-69

जीवन के अन्य पहलू अछूते ही रह गए। अन्त में गुप्त जी ने लिखा है- इस तरह वर्षो से चलता हुआ अंग्रेजी व्यापार शाइस्ता खाँ के शासनकाल के अन्त तक एकदम जड़ से उखाड़ दिया गया।..... बंग इतिहास के लेखक मार्शमैन लिखते है कि यद्यपि अंग्रेजों और अन्य यूरोपियन जातियों से शाइस्ता खाँ का बहुत कड़ा बर्ताव रहा पर देशी प्रजा उसे बहुत चाहती थी। वही साहब कहते है कि उसके समय में 1 पाई का 8 मन अनाज बिकता था। इस बात की यादगार में उसने ठाके के नगर द्वार बनवाए और उन पर लिख दिया कि जब तक कोई हाकिम ऐसा सस्ता अनाज न कर दे, इस द्वार से कभी प्रवेश न करें।''[1]

दो ऐतिहासिक संतों के जीवन चरित भी गुप्त जी ने लिखे। 'साधु हरिदास' और 'साधु रामस्वरूप सीहा' ये जीवन चरित गुप्त जी की धार्मिक भावना को दर्शाते हैं। साधु हरिदास पर तो गुप्त जी ने पुस्तक भी लिखी हैं। ये साधु महाराजा रणजीत सिंह के समय के थे। जिनके समय में इनके चमत्कार हुए थे वे लोग जीवित नहीं हैं। इस बात का गुप्त जी को अफसोस रहा। उस लेख में गुप्त जी ने उनकी साधना का महत्त्वपूर्ण अंश प्रस्तुत किया है और साधना कैसी करनी चाहिए ये भी बताया है। साथ-साथ ऐसे साधुओं की उपेक्षा पर चिंता जाहिर करते हुए कहा है- ''हिन्दुओं के दर्शन शास्त्र पर कृस्तानों को श्रद्धा नहीं। उधर हम हिंदू लोग घोर अंधकार में पड़े हुए, आप ही अपने को भूल गये हैं। हमें अपने ऊपर आप ही विश्वास नहीं है, हमारा विश्वास करेगा कौन? वह कृस्तान लोग होते और स्वयं गवाही देते तो क्या अच्छा होगा? कैसा विलक्षण आदर सब लोग करते?''[2]

दूसरा लेख साधु रामस्वरूप सीहा का है। इसमें लेखक ने इनके साधु बनने की प्रक्रिया से लेकर दादूपन्थी होने की कहानी कही है। उनके सीहा (रेवाड़ी) में बसने

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.78-79

2 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.179

और फिर उनके चमत्कारों की कहानी कही है। ''बाबाजी विरक्त साधु थे, परन्तु सीहा वालों के लिए हकीम थे, सब फैसले उनके द्वारा होते थे। सीहे के वही वैद्य थे, उन्हीं के द्वारा सब अच्छे होते थे।..... वह गये और अपने कलिकाल के सिर पर नृत्य करते हुए, सतयुग को अपने साथ ले गये।''[1]बाबा की महत्ता और उनके जाने के बाद की दशा दोनों स्थितियाँ गुप्त जी ने स्पष्ट की है।

गुप्त जी द्वारा लिखे गये जीवन चरितों में बहुत सी कमियाँ रह गई हैं। कहीं उन्होंने नायक के साहित्यिक कार्य को मुख्य केन्द्र बिन्दु बनाया है, तो कहीं उसके आत्मचरित को। इतिहास प्रसिद्ध पात्रों की मुख्य विशेषताओं को लेख का मुख्य केंद्र माना है। नायक के बाह्य व्यक्तित्व का चित्रण एक या दो चरित लेखों में शब्द चित्रों के माध्यम से दिया है जैसे- गौरीदत्त, देवकीनन्दन तिवारी आदि। अन्य चरित लेखों में इनका अभाव है। प्रतापनारायण मिश्र के चरित लेखन में उनके जीवन, वंश, क्रम आदि का परिचय तो विस्तृत रुप से दिया परन्तु साहित्यिक कृतियों का विवेचन तक नहीं किया। इसी तरह अन्य नायकों के चरित लेखों में भी साहित्यिक कृतियों के विवेचन में कमी पाई जाती है। जीवन चरित में जीवन के सम्पूर्ण पक्ष का उद्‌घाटन होना चाहिए था, जोकि नहीं हो पाया।

परन्तु इन कमियों के होते हुए भी ये चरित लेख अपना महत्त्व रखते हैं। चरित नायक के जन्म, वंश, शिक्षा, स्वभाव, गुण, उदारता, रचनाएँ, मृत्यु आदि का बड़ा ही मार्मिक और रोचक विवरण प्रस्तुत किया है। बीच-बीच में रोचक प्रसंग भी है। वैवाहिक जीवन का विवरण केवल 'स्पेन्सर' के प्रसंग में है। परन्तु गुप्त जी चरित लेखकों की पहली पीढ़ी में से एक थे। उस युग की न्यूनताएँ, उपलब्धियाँ और सीमाएँ उनके साथ थी। सामग्री का अभाव भी इन सीमाओं का मुख्य कारण था। परन्तु जागरूक देशभक्त सचेतन पत्रकार और हिंदी के परम सेवक होने के साथ-साथ उन्होंने इस दिशा में जो पहल की वह आज भी सराहनीय है।

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, बाबू बालमुकुंद गुप्त रचनावली, खण्ड-3, हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा कॉम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2013, पृ.185

5.3 संपादित/अनूदित रचनाएँः-

डॉ. के.सी. यादव के अनुसार बाबू बालमुकुंद गुप्त ने छोटी-छोटी, मौलिक, संपादित और अनूदित सत्रह पुस्तकों की रचना की थी। मौलिक रचनाओं में- हिंदी भाषा, शिवशंभु के चिट्ठे, चिट्ठे और खत, स्फुट कविताएँ, चरित चर्चा, उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों का इतिहास, खिलौना और खेल-तमाशा आदि हैं। हिंदी भाषा नाम की पुस्तक 'गुप्त जी' की मृत्यु के कारण अपूर्ण रह गई। उनकी मृत्यु के बाद उनके मित्र और सहयोगी पं. अमृतलाल चक्रवर्ती के द्वारा यह पुस्तक छापी गई। 'शिवशंभु के चिट्ठे' 'गुप्तजी' की सबसे प्रसिद्ध रचना है। पहले ये चिट्ठे 'गुप्त जी' के मित्र बाबू दयानारायण निगम के प्रसिद्ध उर्दू मासिक 'जमाना' (कानपुर) में छपे थे। फिर छः चिट्ठों का प्रकाशन अंग्रेजी में हुआ। इन चिट्ठों को 'गुप्त जी' ने 1906 में पाठकों की माँग पर पुस्तक रूप में छपवा दिया। इन चिट्ठों का राजनैतिक समीक्षा साहित्य में बहुत महत्त्व है। अंग्रेजी शासन के विरुद्ध इन निबंधों ने आग के गोले उगले थे। इनकी ताजगी इतने वर्षों के पश्चात भी उतनी ही है।

'चिट्ठे और खत' नाम की रचना भी 'गुप्त जी' पाठकों के अनुरोध पर पुस्तककार रूप में छपवाई। ये 'चिट्ठे' और दो खत जिनमें 'शाइस्ता खाँ' और अलीगढ़ के नवाब 'सर सैयद अहमद खाँ' के खत भी थे, इनका संग्रह करवाकर पुस्तककार रुप में छपवाने को दिया, परन्तु बीच में ही गुप्त जी की मृत्यु हो गई, तो इन्हें बाबू श्रीयुत बाबू यशोदा अखोई की तरफ से प्रकाशित करवाया गया। ये निबंध राजनीति के साथ सामाजिक-सांस्कृतिक महत्त्व भी रखते हैं।

'स्फुट कविताएँ' में गुप्त जी की कविताएँ हैं। 1905 तक की कविताएँ 'गुप्त जी' ने छपवाई और 1905 से 1907 तक की कविताएँ 'झाबरमल शर्मा' के प्रयत्नों से उसमें सम्मिलित हो सकी। गुप्त निबंधावली में भी इनका संग्रह देखा जा सकता है। 'शिवशंभु के चिट्ठों' की तरह इन कविताओं में देश की वर्तमान दशा और अंग्रेज शासकों की क्रूर नीतियों का पर्दाफाश किया है। इनमें धार्मिक, सामाजिक तथा

राजनैतिक विषयों की कविताएँ हैं। 'चरित चर्चा' और 'उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों के इतिहास' को के.सी. यादव ने अप्रकाशित माना है। 'चरित चर्चा' का संग्रह 'झाबरमल्ल शर्मा' और 'बनारसी दास चतुर्वेदी' द्वारा संपादित गुप्त निबंधावली (1950) में मिलता है। इनका पुस्तकार रूप में संस्करण अभी तक सामने नहीं आया है। इस चर्चा में 'गुप्त जी' ने हिंदी, उर्दू और इतिहास के प्रमुख व्यक्तियों की जीवन के महत्त्वपूर्ण पक्षों को उद्घाटित कर हिंदी समाज के सम्मुख प्रस्तुत किया था।

'उर्दू-हिंदी संवाद पत्रों का इतिहास' भी गुप्त-निबंधावली में प्रकाशित हैं। 'राधाकृष्ण दास' के बाद 'गुप्त जी' दूसरे इतिहासकार हैं जिन्होंने इस तरह का प्रयत्न किया। 'गुप्त जी' ने इस इतिहास में तात्कालिक उर्दू-हिंदी पत्रों के गुण-अवगुण, जन्म-मृत्यु, संपादक मालिक का परिचय, अखबार की पॉलिसी आदि बातें, विस्तार से कही है। सन् 2010 में 'बृज किशोर वशिष्ट' ने 'स्वराज प्रकाशन' नई दिल्ली से इन्हें पुस्तकार रुप में छपवाया। हिंदी और उर्दू भाषाओं के विकास में यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। श्री बनारसी दास चतुर्वेदी ने लिखा है- ''गुप्त जी की रचनाओं में सबसे अधिक महत्त्व तथा स्थायित्व किस रचना में है। यह प्रश्न विवादग्रस्त हो सकता है पर इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि पत्रों के इतिहास के विषय पर वे हम लोगों के एकमात्र पथ-प्रदर्शक रहे हैं। उनके पूर्व सिर्फ एक छोटी सी पुस्तिका स्वर्गीय बाबू राधाकृष्ण दास ने लिखी थी पर वह बिल्कुल अधूरी थी।''[1]

अब तक जिन छह रचनाओं की चर्चा हुई है, वे सभी भारतमित्र में धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे। परंतु 'गुप्त जी' की दो मौलिक रचनाएँ 'खेल-तमाशा' और 'खिलौना' इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद से छपकर आई थी। 'गुप्त जी' ने ये दोनों पुस्तकें बच्चों के लिए छद्म नाम (रसिकलाल दत्त) से छपवाई थी। इस छद्म नाम के पीछे भी एक रहस्य था। 19वीं शताब्दी के अंत तक हिंदी में बच्चों के लिए पुस्तकें नहीं लिखी

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, कलकत्ता, 1950 पृ.238

जाती थीं। कुछ अन्य भाषाओं, अंग्रेजी, बंगला आदि में बच्चों के लिए पुस्तकें लिखी जा चुकी थीं। गुप्त जी ने पुस्तक (खिलौना और खेल-तमाशा) पहले बंगला में लिखी थी, उसके बाद गुप्त जी ने यह हिंदी में लिखी। परन्तु दोनों ही भाषाओं में लेखक का नाम 'रसिकलाल दत्त' है। डॉ. के.सी. यादव ने इस रहस्य को सुलझाते हुए कहा है- ''गुप्त जी साहित्य की बारीकियों की तरह ही, समाज की पेचीदगियों की भी गहरी समझ रखते थे। तत्कालीन वातावरण में उनकी बंगला पुस्तक के प्रकाशन में आने वाली अड़चनों को उन्होंने आने से पहले ही भांप लिया था। जब हिंदी में बच्चों की पुस्तकें लिखने, छपने का चलन ही नहीं है तो एक हिंदी लेखक बंगला भाषा में बच्चों की पुस्तकें कैसे लिख सकता है? अतः वह विशुद्ध बंगला भाषी बन गए- रसिककाल दत्त, और पुस्तक छप गई। चूंकि हिंदी संस्करण के लिए विषयवस्तु ताना-बाना, चित्र आदि सब चीजें बंगला 'खिलौना' से ली गई थीं, सो यहाँ भी रसिकलाल दत्त बना रहना पड़ा।''[1] इन पुस्तकों में गुप्त जी ने चित्रों के माध्यम से, छोटे-छोटे गीतों के माध्यम से, छोटी-छोटी कहानियों के माध्यम से बच्चों को मात्राओं की जानकारी दी है। सचित्र रूप से लयात्मक गीत बनाकर, प्रतीकों के द्वारा बच्चों को हिंदी की वर्णमाला की जानकारी दी है। इ और ई का योग समझाते हुए गुप्त जी ने लिखा है-

''अरी चमेली <u>अँखियां</u> खोल।
छोड़ रूठना मुँह से बोल।
आया है ससुराल का <u>नाई</u>।
लाया तेरे लिये <u>मिठाई।</u>
रथ में बैठा बनरा आवे।
तुझको साथ <u>बिठा</u> ले जावे।''[2] (खेल तमाशा)

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-8, खिलौना (लेखक- रसिकलाल दत्त, बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.9-10 (सम्पादकीय)

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-9, खेल-तमाशा (लेखक- रसिकलाल दत्त, बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.15

जो शब्द अंडरलाइन हैं वो गुप्त जी ने उभार कर लिखे हुए हैं। इन बड़े अक्षरों से अभिप्राय यह था कि इन्हें बच्चे पहचान कर, याद कर लें तब बाद में मिलाकर पढ़ने में आसानी होगी। 'खेल-तमाशा' में गुप्त जी ने मात्राओं की जानकारी चित्रों और कविताओं के माध्यम से दी है। इ, ई, ा, उ, ऊ, ऋ आदि मात्राओं की जानकारी दी गई है। 'खिलौना' में गीतों और कहानियों के माध्यम से बच्चों को खेल-खेल में शिक्षा देने का प्रयास किया है। उस समय यह हिंदी में पहला ही प्रयास था। 'खिलौना' पहले आई थी, 'खेल-तमाशा' बाद में। दोनों पर ही लेखक का नाम 'रसिकलाल दत्त' लिखा हुआ था।

खिलौना पुस्तक के बारे में एक और विवाद प्रसिद्ध है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'खिलौना' में छपी एक कविता 'गिलहरी का विवाह' की आलोचना की। 'भारतमित्र' में एक सज्जन ने द्विवेदी जी को कहा कि- आपकी आलोचना ठीक नहीं है। फिर कुछ, कहा-सुनी दोनों ही तरफ से हुई। 'द्विवेदी जी' के मित्र पं. श्रीधर पाठक ने कहा है कि आप जिसकी कविता की आलोचना कर रहे हैं वह भारतमित्र सम्पादक 'बालमुकुंद गुप्त' ही है। तो 'द्विवेदी जी' ने 'गुप्त जी' को माफीनामा लिख कर भेजा कि उन्हें नहीं पता था कि वह पुस्तक आपकी लिखी हुई है। 'गुप्त जी' ने द्विवेदी जी को लिखकर भेजा कि- ''पोथी चाहे मित्र की हो या शत्रु की, अपने की हो या बेगाने की, आलोचना उसकी न्याय से होनी चाहिए। यह तो कोई बात नहीं कि मित्र की हो तो उसकी प्रशंसा की जाये और शत्रु की हो तो निन्दा। ऐसी अनुदारता लेकर साहित्य के मैदान में कभी आगे न बढ़ना चाहिये''[1]

ऐसी निष्पक्ष सोच के व्यक्ति थे बालमुकुंद गुप्त सदैव उन्होंने इन्हीं सिद्धान्तों का पालन किया। आलोचना करने में उन्होंने छोटे-बड़े, मित्र-शत्रु किसी को नहीं छोड़ा।

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त निबन्धावली, गौरव गाथा संगम, शाहदरा, दिल्ली, 1994, पृ.428

गुप्त जी की संपादित/अनूदित रचनाओं में रत्नावली (नाटिका), हरिदास रासपंचाध्यायी, भंवरगीत, सर्पाघात चिकित्सा आदि हैं। डॉ. के.सी. यादव ने इनकी चार रचनाओं को इसी श्रेणी में सम्मिलित किया है। जिनमें से जहांगीर नामा, मडेल भगिनी, सती प्रताप नाटक (उर्दू) और राजाराम मोहन राय की जीवनी (उर्दू) को सम्मिलित करते हैं। परन्तु ये चार रचनाएँ अभी तक प्रकाश में नहीं आई हैं। पं. झाबरमल शर्मा ने गुप्त जी को लिखे अपने संस्मरण 'उन दिनों के मित्र' में इस अनुवाद के बारे में लिखा है- ''राजाराम मोहन राय की जीवनी का बंग भाषा से और सती प्रताप नाटक का हिंदी से उर्दू में उल्था गुप्त जी ने अपने गुड़ियानी रहने के दिनों में ही किया था। ये दोनों पुस्तकें मुंशी प्रतापकृष्ण के रहबर प्रेस, मुरादाबाद से प्रकाशित हुई थी।''[1]

'हिन्दोस्तान' छोड़ने के पश्चात् 'गुप्त जी' अपने ग्राम गुडियानी गए हुए थे। वहाँ पर 'हिंदी बंगवासी' के संस्करण मंगवाकर पढ़ते थे। 'मडेल भगिनी' का दोषपूर्ण अनुवाद, जब उन्होंने पत्र में पढ़ा तो संपादक को पत्र लिखा। संपादक ने उन्हीं से सही अनुवाद करने की प्रार्थना की। 'गुप्त जी' ने सही अनुवाद करके भेजा तो संपादक पं. अमृतलाल चक्रवर्ती प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके और गुप्त जी को 'हिंदी बंगवासी' में आने का न्यौता दिया। इसी अनुवाद के बारे में पं. झाबरमल्ल शर्मा ने संस्मरण 'बंगवासी का बुलावा' के बारे में लिखा है। संपादक अमृतलाल चक्रवर्ती के द्वारा गुप्त जी को भेजे गए पत्र से गुप्त जी द्वारा 'मडेल भगिनी' का 'शिक्षिता हिन्दूवाला' के नाम से अनुवाद करने की जानकारी मिलती है। अमृतलाल चक्रवर्ती गुप्त जी को पत्र में लिखते हैं- ''आपने पण्डित भुवनेश्वर मिश्र जी के नाम से 'मडेल भगिनी' का जो अनुवाद भेजा है, वह पण्डित जी की गैरहाजिरी में मुझे ही खोलना पड़ा। आपका अनुवाद सब प्रकार से प्रशंसा योग्य हुआ है और हम लोगों ने छापना

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.51

भी आरंभ कर दिया है।''[1] परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक 'गुप्त जी' का किया हुआ 'मडेल भगिनी' का हिंदी अनुवाद जो 'शिक्षिता हिंदू बाला' के नाम से हुआ था अभी तक सामने नहीं आया है।

'हरिदास' नाम की पुस्तक के बारे में कहा जाता है कि यह बंगला के 'बाबू रंगलाल मुखोपध्याय' की रचना का हिंदी अनुवाद है जो 'बालमुकुंद गुप्त' ने किया था। परन्तु यह पुस्तक अनुवाद न होकर अपनी भाषा में (हिंदी में) लिखी गई गुप्त जी की रचना है। सामग्री अवश्य 'रंगलाल मुखोपध्याय' की है। पहले यह रचना उर्दू में छपी थी, बाद में हिंदी में छपी थी। 'गुप्त जी' ने 'हिंदी बंगवासी' के पाठकों को देने के लिए तथा 'भारतमित्र' के पाठकों को देने के लिए दो संस्करण निकाले। 'हरिदास' और 'रामस्वरूप' नामक संतों का गुप्त जी ने जीवन चरित भी लिखे हैं। परंतु 'हरिदास' के चमत्कारों का वर्णन अति संवेदनशीलता से 'हरिदास' नामक पुस्तक में किया है। साथ-साथ भारतवर्ष में साधुओं के अभाव की चर्चा की है। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में आने वाले लोगों को अपने सिद्ध पुरुषों पर भी ध्यान देने को कहा है। 'हरिदास' की योग समाधि की आदि से अन्त तक चर्चा की है। महाराजा रणजीत सिंह, ध्यान सिंह, अंग्रेज अधिकारियों द्वारा इनकी सत्यता का प्रमाण दिया है। इन्हीं के साथ के रेवाड़ी के साधु इन्द्रभान और साथ रामस्वरूप सीहा की भी चर्चा की है। इस पुस्तक में गुप्त जी ने जितने भी संदर्भ लिए हैं वे सभी अंग्रेज अधिकारियों की पुस्तकों से लिए हैं। ''गुप्त जी की डायरी के अनुसार उनकी 'हरिदास' नाम की पुस्तक सन् 1896 ई0 तारीख 14 मई को बंगवासी स्टीम प्रेस में छपने को दी गई और वह 23 जुलाई 1896 को छपकर तैयार हुई। उसके भी लोगों ने बड़ा पसन्द किया था। तदंतर

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.63

उर्दूवालों के आग्रह पर गुप्त जी को सन् 1898 में हरिदास का उर्दू में अनुवाद करना पड़ा। हरिदास का वह उर्दू संस्करण 'रहबर' प्रेस से प्रकाशित हुआ था।''[1]

'गुप्त जी' हरिदास जी के गुणों का वर्णन करते हुए कहते हैं- ''केवल समाधि ही का गुण हरिदास जी में न था और भी कितने ही महात्माओं के योग्य गुण इन महापुरुष में थे। अपनी आश्चर्य लीलाओं से उन्होंने लोगों को मोहित कर डाला था। भगवान ने उनको जो गुण दिये थे, उनसे वह सर्वत्र पूजनीय थे।''[2]

'हरिदास' के साथ-साथ भारतीय सभ्यता और संस्कृति का भी प्रमाण गुप्त जी ने दिया है। यह पुस्तक गुप्त जी ने इसलिए लिखी ताकि लोग अपने प्रदेश के साधुओं को पहचान सके। ऐसे विलक्षण साधु हमारे बीच हुए हुए हैं जो अपने योग से अंग्रेजों को प्रभावित कर सकते थे, परन्तु हम उनको भूल बैठे हैं। भूमिका में गुप्त जी ने लिखा है- ''अंग्रेजों के 'मिस्मिरिजम्' और 'थियोसोफिवालों' के योगाभ्यास से दबे हरिदास को बंगाल में अंग्रेजी पढ़े बंगाली बाबू की लेखनी से उखड़वाया। मेरी इच्छा हुई कि मैं हिन्दोस्थानी पोशाक में हरिदास जी के पंजाबी और हिन्दुस्थानियों को दर्शन कराऊँ जिससे वह अपने देश के गौरव साधु हरिदास जी को पहचानें तथा अपनी भूल पर कुछ तो लज्जित हों। उसी से यह सब किया है।''[3]

जिससे वे अपनी संस्कृति और सभ्यता को जाने। हिंदी बंगवासी के समय की गुप्त जी की हिंदी सेवा के रुप में 'हरिदास' और 'रत्नावली नाटिका' का नाम लिया जा सकता है। 'रत्नावली नाटिका' प्रसिद्ध संस्कृत कवि श्री हर्ष देव की रचना है। इस संस्कृत रचना का गुप्त जी ने हिंदी अनुवाद किया था। इस रचना के अनुवाद का कार्य भारतेंदु ने आरंभ किया था परन्तु वे इसे पूरा न कर सके। भारतेंदु ने 'नाटक'

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.78

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-5, हरिदास (संकलनकर्त्ता- बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर- 18, गुडगांव, 2012, पृ.66

3 वहीं, पृ.17 (भूमिका से)

नाम की पुस्तक में इसका जिक्र किया है। 1889 ई0 में गुप्त जी ने पं. प्रतापनारायण मिश्र से अनुवाद करने का निवेदन किया। परन्तु वे भी इस कार्य को पूरा नहीं कर सके। अंत में 1898 ई0 में सितम्बर के महीने में गुप्त जी ने इस कार्य को पूरा करने का बीड़ा उठाया। उस समय गुप्त जी हिंदी बंगवासी में थे। हिंदी बंगवासी के पाठकों को उन्होंने उपहार स्वरूप यह पुस्तक दी थी। परंतु गुप्त जी अपने इस कार्य से संतुष्ट नहीं थे। इसलिए उन्होंने 1902 में इस पुस्तक का दोबारा अनुवाद किया, यह अनुवाद पहले से अधिक शुद्ध था। फिर 'भारतमित्र' के पाठकों के उपहार स्वरूप वह पुस्तक दी। इस पुस्तक की भूमिका में उन्होंने लिखा- ''मुझसे जहाँ तक बन पड़ा है अपनी पुस्तक को शुद्ध और सरल बनाने में त्रुटि नहीं की। इस नाटिका का अनुवाद करना मेरा काम नहीं था। क्योंकि मैं संस्कृत अच्छी नहीं जानता। तथापि स्वर्गीय भारतेंदु जी पर बहुत भक्ति होने के कारण मैंने यह काम किया। मुझे इससे बड़ा आनन्द है कि भारतेंदु जी द्वारा सबसे पहले छेड़ी हुई यह पुस्तक आज पूरी हो गई।''[1]

गुप्त जी संस्कृत नहीं जानते थे परन्तु फिर भी उन्होंने अपने प्रयास से 'रत्नावली नाटिका' का अनुवाद किया। 'गुप्त जी' के अनुवाद की हिंदी समाज में बहुत प्रशंसा हुई। पं. महावीर प्रसाद द्विवेदी के द्वारा गुप्त जी को एक पत्र लिखा है- ''रत्नावली का जो अनुवाद आपने किया है वह हमने देखा है- देखा ही नहीं अच्छी तरह मनन किया है।... इसका जब-जब हमको स्मरण आता है, तब-तब साथ ही साथ आपका अनुवाद भी स्मरण आता है।..... आप कहते हैं कि आप संस्कृत नहीं जानते। न जानते होंगे- जब आप नहीं जानते तो तब तो ऐसा उत्कृष्ट अनुवाद कर सके। यदि जानते होते तो न जाने क्या दशा होगी। निश्चय आपका रत्नावली का अनुवाद बहुत ही सरस है।''[2]

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-4, रत्नावली नाटिका, (अनुवादकः बाबू बालमुकुंद गुप्त), हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.20

2 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.77

गुप्त जी ने जो कार्य किया वह जी-जान से किया, चाहे इसके लिए उन्हें अथक प्रयत्न ही क्यों न करना पड़ा। कई बार वे स्वयं के किए हुए कार्य से ही संतुष्ट नहीं होते थे और उसमें जब तक जी-जान नहीं लगा देते थे, चैन नहीं लेते थे। इसी प्रकार गुप्त जी ने अन्य सम्पादन कार्य किए जिनमें से रास-पंचाध्यायी और भंवरगीत भी मुख्य है। मध्यकालीन कवि 'नन्ददास' जो अष्ठछाप के आठ कवियों में से एक थे, उनकी दो मुख्य कविताओं का संकलन गुप्त जी ने किया। इसकी भूमिका में उन्होंने शुद्ध रचना मिलने में होने वाली कठिनाईयों का भी जिक्र किया है। परन्तु जैसा शुद्ध संकलन उन्होंने किया वह भी सराहनीय है।

पुराने कवियों के प्रति गुप्त जी के मन में कितनी श्रृद्धा और प्रेम था। यह बात उनके द्वारा लिखी गई 'रासपंचाध्यायी' और 'भंवरगीत' की भूमिका से पता चलता है। गुप्त जी ने लिखा है- ''नन्ददास की कविता इतनी सुन्दर और स्वच्छ है कि उनके लिए एक कहावत चली आती है- सब गड़िया नन्ददास जड़िया' अर्थात् और सब कवि घड़ने वाले और नन्ददास जड़ने वाले। सब जानते हैं कि घड़ने वालों से जड़ने वालों का काम बहुत सफाई का और बारीक होता है।''[1]

ये दोनों रचनाएँ 'गुप्त जी' ने 'भारतमित्र' के पाठकों को उपहार स्वरूप देने के लिए संकलित की थी। दोनों रचनाएँ ब्रजभाषा की थी। इन रचनाओं का संकलित करने का उद्देश्य अपनी धरोहर, अपनी संस्कृति की रक्षा करना था। गुप्त जी ने 'नन्ददास' की रचनाएँ बचपन में सुनी थीं। भूमिका में गुप्त जी ने लिखा है- ''बहुत सी कविताएँ इसी प्रकार बड़े-बूढ़ों के मुखस्थ थीं उनमें से जो लिखी गई वह बच गई, जो नहीं लिखी गई वो लुप्त हो गई। बहुत सी ऐसी कविताएँ अब भी हैं जो लुप्त हो सकती हैं। अब हिन्दुओं का वह समय भी नहीं है जो उनके बड़े-बूढ़े सवेरे उठकर भगवान का नाम लिया करते थे और भगवदगुणावाद सम्बन्धी कविताएँ पढ़ा करते थे।

---

1 (संपादक) झाबरमल्ल शर्मा, पं. बनारसी दास चतुर्वेदी, बाबू बालमुकुंद गुप्त स्मारक ग्रंथ, गुप्त स्मारक प्रकाशन समिति, 174, हरिसन रोड, कलकत्ता, 1950, पृ.159

इसमें आजकल के समय में जो कुछ लिखा जाये और छप जाए उसी के रक्षित होने की आशा करनी चाहिए।''[1]

दूसरी रचना 'भंवरगीत' भी नन्ददास की लिखी हुई ब्रजभाषा की कविता है। नन्ददास का लिखा हुआ भंवरगीत बहुत ही प्रसिद्ध रहा था। इस रचना के बारे में गुप्त जी ने लिखा था कि इसे प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। यह गुप्त जी के पुत्र नवलकिशोर के प्रेस के 'सूरसागर' में दिखाई पड़ती है।

ऐसी रचनाओं के संकलन के बारे में गुप्त जी कितना चिन्तित थे, उनके कथनानुसारः- ''यह दोनों कविताएँ ब्रजभाषा की ऊँचे दरजे की कविता के नमूने हैं। अष्टछाप के कवि नन्ददास बहुत ऊँचे दरजे के कवि थे और उन्हीं के समय में ब्रजभाषा की सबसे अधिक उन्नति हुई थी और उक्त भाषा खूब मंझी और स्वच्छ हुई थी। पर इस देश में हीरे-कंकड़ का एक मोल है। यहाँ इतनी कविताएँ रद्दी में पड़ी फिरती थीं, कोई इनकी ओर ध्यान तक नहीं देता था। आशा की जाती है कि आगे यह दशा न रहेगी।''[2]

'सर्पाघात चिकित्सा' नाम की पुस्तक भी 'बालमुकुंद गुप्त' द्वारा संपादित की गई है। इस पुस्तक पर 'उचितवक्ता सम्पादक' 'दुर्गाप्रसाद मिश्र' का नाम लिखा हुआ था। परन्तु भूमिका को पढ़ने से उलझन दूर होती है। 'शिशिर कुमार घोष' की पुस्तक 'सर्पाघात प्रतिकार' का अनुवाद पं. दुर्गाप्रसाद मिश्र के हाथों से होना था परन्तु 'दुर्गाप्रसाद मिश्र' के बीमार होने से इस पुस्तक को 'बालमुकुंद गुप्त' ने संपादित किया। यह पुस्तक 'गुप्त जी' के कार्यालय से ही छपी थी, इसलिए गुप्त जी ने

---

1 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-6, रास पंचाध्यायी एवं भंवरगीत, (संकलनकर्त्ता- बालमुकुन्द गुप्त) हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.17 (भूमिका से)

2 (संपादक) के.सी. यादव, गुप्त ग्रंथमाला-6, रास पंचाध्यायी एवं भंवरगीत, (संकलनकर्त्ता- बालमुकुन्द गुप्त) हरियाणा इतिहास एवं संस्कृति अकादमी, हीपा काम्पलेक्स, सेक्टर-18, गुडगांव, 2012, पृ.16-17 (भूमिका से)

शिष्टाचार वश अपना नाम हटा लिया होगा। पर यह पुस्तक गुप्त जी द्वारा ही संपादित हुई है अनुवाद चाहे दुर्गाप्रसाद मिश्र ने किया हो।

इस पुस्तक में साँप के काटने से पहले और बाद की चिकित्सा दी गई है। साँपों की प्रजातियाँ विषैले साँपों की जानकारी, उनके स्वभाव, गुण, रंग आदि के बारे में बताया जाता है। इसमें पन्द्रह अध्याय हैं। क्रम से सभी साँपों के बारे में विस्तार से बताया गया है। अन्त में लेखक ने अपने अनुभव भी साँझे किये हैं कि कैसे मालवैद्य के साथ साँप को पकड़ने का अहसास कैसा रहा? उस समय में चिकित्सा सुविधाओं का अभाव था। तत्कालीन परिस्थितियों को देखते हुए यह पुस्तक साँप के काटने पर बहुत उपयोगी सिद्ध हुई होगी। जानकारी के अभाव में रोग का सही इलाज नहीं हो पाता, परन्तु इस पुस्तक में साँपों से संबंधित सभी जानकारियाँ देने का प्रयास किया गया है।

गुप्त जी द्वारा संपादित और अनूदित पुस्तकें अपना विशेष महत्त्व रखती हैं। उनकी मौलिक रचनाओं के साथ-साथ इनका भी विशेष महत्त्व है।